इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

खंड

3

तिङन्त प्रकरण – भू धातु (परस्मैपद)

इकाई 11

भू धातु (परस्मैपद लट् एवं लिट् लकार)

इकाई 12

भू धातु (परस्मैपद) लुट् और लृट् लकार

इकाई 13

भू धातु (परस्मैपद) आशीर्लिङ् और लोट् लकार

इकाई 14

भू धातु (परस्मैपद) लङ् एवं विधिलिङ् लकार

इकाई 15

भू धातु (परस्मैपद) लुङ् और लृङ् लकार

खंड 3 का परिचय

प्रिय शिक्षार्थियो एम.एम. (संस्कृत) कार्यक्रम के दूसरे पाठ्यक्रम के अन्तर्गत अब आप तिङन्त प्रकरण का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस प्रकरण में कुल पांच इकाइयाँ सम्मिलित हैं जिनमें भू धातु – परस्मैपदी के लट् लकार से लेकर लृङ् लकार तक सभी दस लकारों में बनने वाले रूपों की सिद्धि प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन किया गया है। विधायक सूत्रों के साथ–साथ वृत्ति, व्याख्या, अनुवाद एवं रूपसिद्धि भी दी गई है ताकि विधायक सूत्रों तथा वृत्ति आदि के कारण संपादित होने वाली रूपसिद्धि प्रक्रिया को आप समझ सकें।

आशा है आप इस खंड में अध्ययन से तिङ् आदि प्रत्ययों के प्रयोग से भू धातु के सभी दस लकारों में बनने वाले रूपों तथा उनके प्रयोग को जानकर भाषा प्रयोग में अधिक सामर्थ्यवान् हो जाएंगे।

शुभकामनाओं सहित।

इकाई 11 भू धातु (परस्मैपद लट् एवं लिट् लकार)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वरदराजाचार्य–विरचित लघुसिद्धान्तकौमुदी के तिङन्त प्रकरण से परिचित होंगे।
- लट् लकार एवं लिट् लकार की रूप-सिद्धि-प्रक्रिया समझ सकेंगे।
- लट् लकार एवं लिट् लकार की रूप-सिद्धि में प्रयुक्त सूत्रों का अर्थ जान सकेंगे।
- भवति पद के परस्मैपदत्व एवं शप् आदि की स्थिति जान सकेंगे।

- लिट् लकार में तिप्, तस् आदि के स्थान पर होने वाले णल्, अतुस् आदि आदेशों का ज्ञान कर सकेंगे।
- इसी क्रम में अन्य रूपों की सिद्धि-प्रक्रिया भी जान सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

लघुसिद्धान्तकौमुदी में षड्लिंग प्रकरण के पश्चात् तिङन्त प्रकरण की स्थिति की गयी है। चूँकि वाक्य में नामपद एवं क्रियापद का विशेष महत्त्व है अतः इस ग्रन्थ में वरदराजाचार्य ने षड्लिंग प्रकरण रूप नामपद-सिद्धि प्रक्रिया के बाद तिङन्त प्रकरण रूप क्रियापद-सिद्धि प्रक्रिया का क्रम दिया है। इस प्रकरण में 10 लकारों के अन्तर्गत धातुओं की रूप-सिद्धि की गयी है। लकार काल के वाचक होते हैं, जैसे– लट् लकार वर्तमान काल का वाचक है। लकारों का क्रम भी अकारादि क्रम से है, जैसे– लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट्, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ्। **'लः कर्माणि च भावे चाकर्मकेभ्यः'** सूत्र में यह बताया गया है कि लकार सकर्मक धातुओं से कर्ता और कर्म में तथा अकर्मक धातुओं से कर्ता और भाव में प्रयुक्त होते हैं।

इस प्रकार लकार का प्रयोग तीन रूपों में होता है – कर्ता, कर्म और भाव। चूँकि भावकर्म प्रक्रिया का लघुसिद्धान्तकौमुदी में एक अलग प्रकरण है अतः यहाँ पर कर्ता अर्थ में ही रूप सिद्धि बतायी गयी है।

11.2 भू धातु लट् लकार की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्र

सूत्र – लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः।।3.4.69।।

वृत्ति – लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यः भावे कर्तरि च।

अर्थ – लकार सकर्मक धातुओं से कर्म और कर्ता में तथा अकर्मक धातुओं से भाव और कर्ता अर्थ में हों।

व्याख्या – इस सूत्र में दो वाक्य हैं (1) लः कर्मणि च। (2) भावे च अकर्मकेभ्यः। प्रथम वाक्य का अर्थ है – सकर्मक धातुओं से लकार कर्म और कर्ता अर्थ में होते हैं और द्वितीय वाक्य का अर्थ है – अकर्मक धातुओं से लकार भाव और कर्ता अर्थ में हों। यहाँ 'लः' प्रथमा बहुवचनान्त है। 'कर्मणि', 'कर्तरि' और 'भावे' पद सप्तमी एकवचनान्त हैं तथा 'अकर्मकेभ्यः' पंचमी का बहुवचन है। 'च' अव्यय पद है। उपर्युक्त दोनों वाक्यों का अर्थ सूत्र-घटित पदों से पूर्ण नहीं होता है। अतः पूर्व सूत्र 'कर्तरि कृत्' 3.4.67 से 'कर्तरि' की अनुवृत्ति करनी पड़ती है। 'धातोः' 3.1.91 सूत्र पूर्व से ही अधिकृत है। यह सम्पूर्ण तिङन्त प्रक्रिया 'धातोः' सूत्र के अधिकार में ही है। उसी का वचन विपरिणाम से यहाँ 'धातुभ्यः' (अकर्मकेभ्योः धातुभ्यः, सकर्मकेभ्यो धातुभ्यः) रूप हुआ है। अधिकृत होने से इस 'धातोः' पद का भी अनुवर्तन होता है। अब इसका सम्पूर्ण अर्थ हुआ – लकाराः सकर्मकेभ्यः (धातुभ्यः) कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यः (धातुभ्यः) भावे कर्तरि च। सूत्र में 'च' का प्रयोग दो बार होने से 'कर्तरि' और अधिकृत होने से 'धातोः' का ग्रहण होता है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि लकारों के तीन अर्थ होते हैं – कर्ता, कर्म और भाव। इसी से कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य का निर्धारण होता है।

यहाँ एक बात स्पष्ट है कि सकर्मक एवं अकर्मक धातुओं में कर्ता की स्थिति समान है। धातु चाहे सकर्मक हो या अकर्मक, दोनों से कर्ता में लकार समानरूपेण हुआ करते हैं। आगे आने वाले दस गणों तथा सभी प्रक्रियाओं में (भावकर्म और कर्तृकर्म प्रक्रिया को छोड़कर) लकारों का प्रतिपादन केवल कर्ता अर्थ में ही किया गया है। कर्म और भाव अर्थ में लकारों का प्रतिपादन लघुसिद्धान्तकौमुदी के भावकर्म प्रक्रिया और कर्मकर्तृप्रक्रिया में किया जायेगा।

सूत्र – वर्तमाने लट्।।3.2.123।।

वृत्ति – वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातोर्लट् स्यात्। अटावितौ। उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्त्वम् **भू सत्तायाम्।।1।।** कर्तृविवक्षायां भू ल् इति स्थिते।

अर्थ – वर्तमान काल की क्रिया के वाचक धातु से 'लट्' प्रत्यय हो। 'लट्' के अकार और वाचक धातु से 'लट्' प्रत्यय हो। 'लट्' के अकार और टकार की इत्संज्ञा हो जाती है। लकार (ल्) की भी इत्संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु उच्चारण सामर्थ्य से 'ल्' की इत्संज्ञा नहीं होती है।

व्याख्या – 'वर्तमाने' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'लट्' प्रथमा विभक्ति एकवचन। 'धातोः' पंचमी विभक्ति एकवचन। 'धातोः' यहाँ अधिकृत है। पहले ही बताया जा चुका है कि 'धातोः' सूत्र का अधिकार पूर्ववत् है। सम्पूर्ण तिङन्त और कृदन्त प्रक्रिया 'धातोः' के ही अधिकार में है। यह सूत्र अपने आप में पूर्ण है। अतः कहीं से अनुवृत्ति की आवश्यकता नहीं है। यहाँ स्पष्ट कर देना उचित है कि वर्तमान आदि काल धातु (भू आदि) के नहीं होते। धातुयें तो शब्दस्वरूप हैं, उनका वर्तमान आदि कालों में रहना सम्भव नहीं है। वर्तमान आदि काल तो धातु के अर्थ (क्रिया) के ही हो सकते हैं। अतः वृत्ति में 'वर्त्तमानक्रियावृत्तेः' कहा गया है तो अर्थ हुआ – वर्तमान काल में जो क्रिया विवक्षित है तद्वाचक धातु – (धातोः) से परे लट् लकार हो।

अब 'लट्' प्रत्यय में टकार की इत् संज्ञा 'हलन्त्यम्' 1.3.3 सूत्र से तथा अकार की इत्संज्ञा 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' 1.3.2 सूत्र से होकर 'तस्य लोपः' 1.3.9 सूत्र द्वारा दोनों का लोप हुआ। 'लशक्वतद्धिते' 1.3.8 सूत्र द्वारा 'ल्' की भी इत्संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु उच्चारण सामर्थ्य से अथवा 'लस्य' 3.4.77 सूत्र के अधिकार के सामर्थ्य से इत्संज्ञा नहीं होती। इस प्रकार सत्ता अर्थ वाली भू धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में वर्तमान काल में लट् होकर एवं अनुबन्धों (ट् एवं अ) का लोप होकर – भू+ल् यह स्थिति हुई।

सूत्र – तिप्-तस्-झि-सिप्-थस्-थ-मिब्-वस्-मस्-तातां-झ-थासाथां-ध्वमिड्-वहि-महिङ् ।।3.4. 78।।

वृत्ति – एतेऽष्टादश लादेशाः स्युः।

अर्थ – ये (तिप्, तस् झि; सिप्, थस्, थ; मिप्, वस्, मस्, त, आताम् झ; थास्, आथाम्, ध्वम्; इट्, वहि, महिङ्) अठारह प्रत्यय ल् के स्थान पर आदेश हों।

व्याख्या – यह सूत्र 'प्रत्ययः' 3.1.1 और 'लस्य' 3.4.77 के अधिकार में पढ़ा गया है। अतः तिप्, तस् आदि अठारह प्रत्यय लकार (ल्) के स्थान पर आदेश होते हैं।

नोटः– तिप् के 'ति' से लेकर अन्तिम प्रत्यय महिङ् के 'ङ्' तक 'तिङ्' प्रत्याहार बनता है। तिङ्+अन्त=तिङन्त। तिङ् से समस्त 19 प्रत्ययों (तिप्, तस्, झि आदि) का ग्रहण होता है। अब स्पष्ट है कि धातु के योग में आने वाले लकार (लट्, लिट् आदि) के स्थान पर उक्त 18 तिङ् प्रत्ययों में से कोई प्रत्यय आदेश होता है।

सूत्र – लः परस्मैपदम्।।11.4.99।।

वृत्ति – लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः।

अर्थ – ल् के स्थान पर होने वाले आदेश परस्मैपद संज्ञक हों।

व्याख्या – यह संज्ञा विधायक सूत्र है। इस सूत्र द्वारा समस्त 18 प्रत्यय, जो ल् के स्थान पर होते हैं, उनकी परस्मैपद संज्ञा हो जाती है। अब यहाँ शंका उठती है कि यदि सभी अठारह प्रत्ययों की परस्मैपद संज्ञा हो जायेगी तो आत्मनेपद संज्ञा किसकी होगी? इसका समाधान आगे आने वाले सूत्र से होता है। वस्तुतः यह सामान्य सूत्र है। इसके कुछ अपवाद आगे दिए जा रहे हैं।

सूत्र – तङानावात्मनेपदम्।।1.4.100।।

वृत्ति – तङ्प्रत्याहारः शानच्कानचौ चैतत्संज्ञाः स्युः। पूर्वसंज्ञाऽपववादः।

अर्थ – तङ् प्रत्याहार (त, आताम्, झ; थास्, आथाम्, ध्वम् और इट्, वहि, महिङ्) तथा शानच् और कानच् प्रत्यय आत्मनेपद संज्ञक हों। यह पूर्व सूत्र 'लः परस्मैपदम्' का अपवाद है।

व्याख्या – लः षष्ठी विभक्ति एकवचन, तङानौ प्रथमा विभक्ति द्विवचन, आत्मनेपदम् प्रथमा विभक्ति एकवचन, तङ् च आनश्च इति तङानौ, इतरेतद्वन्द्वः। यहाँ 'आन' यह अनुबन्ध रहित पढ़ा गया है। इत् संज्ञक वर्णों को ही अनुबन्ध कहा जाता है। जब अनुबन्धरहित कोई प्रत्यय पढ़ा जाये तो सब प्रकार के अनुबन्धों से युक्त का ही ग्रहण होता है। 'निरनुबन्धकग्रहणे सानुबन्धस्यः' यह न्याय है। इस न्याय से शानच्, कानच् और चानश् तीनों का ग्रहण प्राप्त होता है परन्तु सूत्र में 'लः' की अनुवृत्ति आने से यहाँ शानच् और कानच् प्रत्ययों का ही ग्रहण होता है, चानश् प्रत्यय का ग्रहण नहीं होता क्योंकि चानश् प्रत्यय 'लः' (लकार के स्थान पर) आदेश नहीं होता, अपितु 'ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश्' 3.2.129 सूत्र द्वारा सीधे धातु से परे विधान किया जाता है। अब सूत्र का अर्थ हुआ (लः) 'ल्' के स्थान पर आदेश होने वाले (तङानौ) तङ् प्रत्याहार तथा शानच् और कानच् प्रत्यय (आत्मनेपदम्) आत्मनेपद संज्ञक हों चूँकि यहाँ परस्मैपद का प्रकरण है, अतः सिद्धि में यह सूत्र उपयोगी नहीं है।

सूत्र – अनुदात्तङित आत्मनेपदम्।।1.3.12।।

वृत्ति – अनुदात्तेतो ङितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्।

अर्थ – जिस धातु का अनुदात्त स्वर इत् हो या जिस धातु में 'ङ्' (ङकार) की इत्संज्ञा हुई हो उस धातु से परे (लकार के स्थान पर) आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों।

व्याख्या – अनुदात्तङितः पंचमी विभक्ति एकवचन, धातोः पंचमी विभक्ति एकवचन, आत्मनेपदम् प्रथमा विभक्ति एकवचन। अनुदात्तश्च ङ् च अनुदात्तङौ, तौ इतौ यस्य तस्माद् अनुदात्तङितः,

द्वन्द्व-गर्भबहुव्रीहिः। 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते' इस न्याय से 'इत्' पद का 'अनुदात्त' और 'ङ्' दोनों के साथ सम्बन्ध है।

धातुपाठ में कहीं-कहीं प्रयोजनवश अनुदात्त स्वर जोड़ा गया है, जैसे – एधँ वृद्धौ धातु में, कमुँ कान्तौ धातु में और यती प्रयत्ने धातु में। यहाँ 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से इत्संज्ञा की गयी है और ये सभी स्वर अनुदात्त हैं। तौ, ये धातुयें अनुदात्तेत हैं। पुनः जिस धातु में ङकार (ङ्) की इत्संज्ञा हुई हो, वह धातु ङित् होती है और उससे परे भी लकार के स्थान पर आत्मनेपद होता है, जैसे – 'शीङ्' स्वप्ने धातु है। यहाँ 'हलन्त्यम्' सूत्र द्वारा 'ङ्' की इत्संज्ञा हुई है अतः यह ङित् है। ङित् होने से इससे परे आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय होते हैं।

सूत्र – स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले।।1.3.72 ।।

वृत्ति – स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रियाफले।

अर्थ – यदि क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त हो तो स्वरितेत् और ञित् धातु से आत्मनेपद प्रत्यय हों।

व्याख्या – यहाँ 'भूवादयो धातवः' 1.3.1 से 'धातोः' का अनुवर्तन है और वचन विपरिणाम करके प्रथमा बहुवचन के स्थान पर पंचमी एकवचन किया गया है। यह पूर्ववत् समझना चाहिए। यहाँ भी लस्य का अध्याहार कर लेना चाहिए। 'स्वरितञितः' पंचमी विभक्ति एकवचन, 'कर्त्रभिप्राये' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'क्रियाफले' सप्तमी विभक्ति एकवचन। स्वरितश्च ञ् च स्वरितञौ, तौ इतौ यस्य, तस्मात् स्वरितञितः (द्वन्द्वगर्भबहुव्रीहिः)। कर्तारम् अभिप्रैति (गच्छति) इति कर्त्राभिप्रायम् (फलम्), तस्मिन् कर्त्रभिप्राये। कर्मण्यण्। क्रियायाः फलम् क्रियाफलम् तास्मिन् क्रियाफले, षष्ठीतत्पुरुषः। अब अर्थ स्पष्ट हुआ कि जिस धातु का स्वरित स्वर इत् हो या जिस धातु में ञकार (भू) की इत्संज्ञा हुई हो, उस धातु से परे लकार के स्थान पर (लस्य)

आत्मनेपद संज्ञक प्रत्यय हों, यदि क्रिया का फल कर्ता को प्राप्त हो रहा हो तो, जैसे – 'यज्' धातु में जकारोत्त्रवर्ती अकार एवं 'डुपचष् पाके' धातु में चकारोत्त्रवर्ती अकार स्वरित हैं और अनुनासिक होने के कारण 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से उनकी इत्संज्ञा भी है अतः यह धातुयें स्वरितेत् हैं। इनसे परे आत्मनेपद के प्रत्यय होंगे किन्तु शर्त है कि क्रिया का फल कर्ता को मिले। यदि क्रिया का फल कर्ता को नहीं मिलेगा तो 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' 1.3. 78 से परस्मैपद ही होगा। पुनः जिस धातु के ञकार (ञ्) की इत्संज्ञा हो उन्हें ञित् कहते हैं, जैसे – डुकृञ् करणे धातु। इस प्रकार की धातुओं से भी कर्तृगामी क्रियाफल होने पर धातु से परे आत्मनेपद के ही प्रत्यय होते हैं। यह सूत्र भी यहाँ उपयोगी नहीं है। केवल छात्रों के ज्ञान के लिए बताया गया है।

सूत्र – शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्।।1.3.78 ।।

वृत्ति – आत्मनेपदनिमित्तहीनाद् धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात्।

अर्थ – उक्तादन्यः शेषः अर्थात् जो कहने से बच जाये, वही शेष है। यहाँ पर शेषात् का अर्थ है – आत्मनेपद के निमित्तों से हीन धातुयें। अब अर्थ हुआ – (शेषात्) जिस धातु में आत्मनेपद का कोई लक्षण विद्यमान न हो, उस धातु से परे (कर्तरि) कर्ता अर्थ में (परस्मैपदम्) परस्मैपद प्रत्यय होते हैं

व्याख्या – 'शेषात्' पंचमी विभक्ति एकवचन, 'कर्तरि' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'परस्मैपदम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि परस्मैपद प्रत्यय केवल कर्ता के ही अर्थ में होते हैं, कर्म और भाव अर्थ में नहीं। 'शेष' का अर्थ समझने के लिए इस सूत्र का पूर्ण सन्दर्भ देखना होगा। आत्मनेपद प्रकरण 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' 1.3.12 से प्रारम्भ होकर 'विभाषोपपदेन प्रतीयमाने' 1.3.77 तक जाता है। इन सूत्रों के आधार पर सामान्यतः इन अवस्थाओं में आत्मनेपद व्यवस्था होती है – 1. भाववाच्य और कर्मवाच्य, 2.अनुदात्तेत, 3.ङित्,

4. स्वरितेत् भाववाच्य कर्तृगामी क्रियाफल होने पर और 5. ञित् कर्तृगामी क्रियाफल होने पर। 'शेष' कहने का तात्पर्य यही है कि इन अवस्थाओं को छोड़कर शेष में कर्तृवाच्य में परस्मैपद का ही विधान होता है। उदाहरण के लिए 'भू' धातु से आत्मनेपद का कोई निमित्त नहीं है, अतः उससे परस्मैपद ही होगा।

सूत्र – तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः।।1.4.101 ।।

वृत्ति – तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः।

अर्थ – तिङ् के दोनों पदों (परस्मैपद एवं आत्मनेपद) के त्रिक क्रमशः प्रथम, मध्यम और उत्तम संज्ञक हों।

व्याख्या – 'तिङ' षष्ठी विभक्ति एकवचन, 'त्रीणि' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'प्रथममध्यमोत्तमाः' प्रथमा विभक्ति बहुवचन, 'परस्मैपदस्य' षष्ठी विभक्ति एकवचन, 'आत्मनेपदस्य' षष्ठी विभक्ति एकवचन। 18 तिङ् प्रत्ययों के त्रिक (तीन का समूह) बने हुए हैं। ये त्रिक परस्मैपद में भी हैं और आत्मनेपद में भी, जैसे– तिप्, तस्, झि यह एक त्रिक है। इसी प्रकार अन्य दो त्रिक मिलाकर तीन त्रिक परस्मैपद (तिप्, तस्, झि; सिप्, यस् थ; मिप्, वस्, मस्) के एवं तीन आत्मनेपद (त, आताम्, झ; थास्, आथाम्, ध्वम्; इट्, वहि, महिङ) के हैं। इधर तीन त्रिकों के साथ ही साथ संज्ञायें भी तीन हैं – प्रथम, मध्यम और उत्तम। अतः आत्मनेपद एवं परस्मैपद दोनों के तीन-तीन त्रिकों की 'यथासङ्ख्यमनुदेशः समानाम्' सूत्र से क्रमशः प्रथम, मध्यम और उत्तम संज्ञा होती है।

सूत्र – तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः।।1.4.102।।

वृत्ति – लब्धप्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानि स्युः।

अर्थ – 'तानि' प्रथमा विभक्ति बहुवचन, 'एकवचनद्विवचबहुवचनानि' प्रथमा विभक्ति बहुवचन, 'एकशः' अव्ययपदम्, 'तिङः' षष्ठी विभक्ति एकवचन, 'त्रीणि प्रथमा विभक्ति बहुवचन। तिङ् का प्रत्येक त्रिक (जिन्हें प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष संज्ञायें प्राप्त हैं) एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन संज्ञक हों।

व्याख्या – तिङ् प्रत्याहार के कुल छः त्रिक (तीन परस्मैपद एवं तीन आत्मनेपद के) हैं। प्रत्येक त्रिक को एकवचन, द्विवचन एवं बहुवचन ये तीन संज्ञायें मिलती हैं। यहाँ भी यथासंख्या परिभाषा के अनुसार प्रत्येक त्रिक का पहला एकवचन, दूसरा द्विवचन और तीसरा बहुवचन होता है, जैसे – प्रथम त्रिक तिप्, तस्, झि है, तो यहाँ तिप्= एकवचन, तस्= द्विवचन और झि = बहुवचन होगा। यही स्थिति अन्य त्रिकों में भी समझनी चाहिए।

अब आगे के तीन सूत्रों द्वारा यह व्यवस्था की जा रही है कि कहाँ किस पुरुष का प्रयोग करना चाहिए –

सूत्र – युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः।।1.4.105।।

वृत्ति – तिङ्वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि (उपपदे) प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः।

अर्थ – तिङ् का वाच्य जो कारक, तद्वाचक युष्मद् शब्द के प्रयुज्यमान या अप्रयुज्यमान रहते मध्यम पुरुष होता है।

व्याख्या – 'युष्मदि' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'उपपदे' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'समानाधिकरणे' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'स्थानिनि' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'अपि' इति अव्ययपदम्, 'मध्यमः' प्रथमा विभक्ति एकवचन (समानाधिकरणे) लकार के साथ समान अधिकरण (वाच्य) वाले (युष्मदि) युष्मद् शब्द के (उपपदे) समीप उच्चरित होने पर (स्थानिनि) उसके अप्रयुक्त वा (अपि) प्रयुक्त होने पर भी (मध्यमः) मध्यम पुरुष होता है। यह सूत्र

विद्यार्थियों को सहजता से समझ में नहीं आता है। अतः तीन खण्डों में इसे सरल रीति से समझाया जा रहा है, यथा –

(क) **युष्मदि उपपदे मध्यमः** – युष्मद् शब्द के समीप उच्चरित होने पर मध्यम पुरुष होता है, जैसे – त्वं वनं गच्छसि। यहाँ 'त्वम्' यह युष्मद् शब्द उपपद (समीप में) है। अतः धातु (गम्) से मध्यम पुरुष हुआ।

(ख) **समानाधिकरणे मध्यमः** – परन्तु वह युष्मद् शब्द लकार का समानाधिकरण होना चाहिए अर्थात् लकार का जो अधिकरण (वाच्य) हो वही अधिकरण युष्मद् शब्द का भी होना चाहिए, यथा– 'त्वं वन' गच्छसि' वाक्य में 'गम्' धातु से लट् लकार कर्ता अर्थ में हुआ है; जो लट् (तिङ्) से जिस कर्ता का निर्देश किया जा रहा है, युष्मद् (त्वम्) शब्द भी उसी का निर्देश कर रहा है, उससे भिन्न का नहीं। अतः दोनों के अधिकरणों में अभेद होने से मध्यम पुरुष होता है। जहाँ भेद होगा वहाँ मध्यम पुरुष नहीं होगा, यथा – 'देवदत्तः त्वां पश्यति'। यहाँ पर 'पश्यति' में लकार देवदत्त नाम कर्ता की ओर निर्देश कर रहा है। अतः भिन्न अधिकरण होने से मध्यम का प्रयोग नहीं हुआ। वृत्ति में तिङ्वाच्यकारकवाचिनि का भी यही अभिप्राय है। भट्टोजिदीक्षित ने 'लकार' की जगह 'तिङ्' का प्रयोग किया है।

(ग) **स्थानिन्यपि** – अर्थात् उपर्युक्त लक्षण वाला युष्मद् शब्द चाहे साक्षात् पढ़ा गया हो या गम्यमान (Understood) हो, दोनों अवस्थाओं में मध्यम पुरुष हो सकता है, यथा – 'त्वं वनं गच्छसि', परन्तु यदि त्वम् (युष्मद्) के प्रयोग के बिना 'वनं गच्छसि' भी कह दें तो भी मध्यम पुरुष का प्रयोग होगा।

सूत्र – **अस्मद्युत्तमः ।।1.4.107।**

वृत्ति – तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः स्यात्।

अर्थ – तिङ् का वाच्य जो कारक, तद्वाचक अस्मद् शब्द के प्रयुज्यमान या अप्रयुज्यमान रहते उत्तम पुरुष हो।

व्याख्या – 'अस्मदि' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'उत्तमः' प्रथमा विभक्ति एकवचन। यहाँ पूर्व सूत्र (युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः) से 'युष्मदि' और 'मध्यमः' को छोड़कर शेष सभी पदों की अनुवृत्ति आती है। तब अर्थ हुआ – लकार (तिङ्) के साथ समान वाच्य वाले अस्मद् शब्द (अहम्) के समीप उच्चरित होने पर उसके प्रयुज्यमान का अप्रयुज्यमान होने पर भी उत्तमपुरुष होता है। इस सूत्र की व्याख्या भी पूर्ववत् समझनी चाहिए। बस 'त्वम्' के स्थान पर 'अहम्' का प्रयोग हो जायेगा।

सूत्र – शेषे प्रथमः ||1.4.108||

वृत्ति – मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः स्यात्। भू इति जाते।

अर्थ – मध्यम और उत्तम का (अविषये) विषय न होने पर प्रथम पुरुष होता है।

व्याख्या – 'शेषे' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'प्रथमः' प्रथमा विभक्ति एकवचन। पहले ही कहा जा चुका है – ''उक्तादन्यः शेषः'' कहे गये से भिन्न को शेष कहते हैं। यहाँ ऊपर 'युष्मद्' और 'अस्मद्' कहे जा चुके हैं; अतः उससे भिन्न सभी शब्द 'शेष' हैं। अब अर्थ हुआ लकार के साथ समान वाच्य वाले (शेषे) युष्मद्-अस्मद् से भिन्न शेष शब्दों के प्रयुज्यमान या अप्रयुज्यमान होने पर (प्रथमः) प्रथम पुरुष होता है। यह सूत्र पूर्व के दो सूत्रों की अपेक्षा विशाल अर्थ वाला है। उपर्युक्त दो सूत्रों में तो केवल युष्मद् और अस्मद् का ही प्रयोग है। यहाँ तो सब प्रकार के सर्वनामों एवं संज्ञाओं को विषय बनाया गया है, यथा – 'भवान् गच्छति', 'देवदत्तः गच्छति' आदि।

यहाँ तक साधारण प्रक्रियान्तर्गत पदों, वचनों और पुरुषों की व्यवस्था दिखाई गयी। अब आगे से भू धातु के लट् आदि लकारों में क्रमशः सिद्धि-प्रक्रिया के सूत्र बताये जायेंगे।

सूत्र – तिङ्शित्सार्वधातुकम् ।।3.4.113।।

वृत्ति – तिङः शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत्संज्ञाः स्युः।

अर्थ – 'धातोः' सूत्र के अधिकार में कहे गये तिङ् और शित् प्रत्यय सार्वधातुक संज्ञक हों।

व्याख्या – 'तिङ्शित्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'सार्वधातुकम्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'धातोः' पंचमी विभक्ति एकवचन। 'धातोः' (पूर्ववत्) अधिकृत है। 'धातोः' सूत्र के अधिकार में पढ़े गये तिङ् और शित् प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा होती है। तिप्, तस्, झि आदि 18 प्रत्यय तिङ् हैं और जिनके 'श्' की इत्संज्ञा हुई है, वे शित् हैं, यथा – शप्, श्मन्, श, श्नम, श्ना आदि प्रत्यय शित् हैं क्योंकि इन सबके शकार (श्) की 'लशक्वतद्धिते' 1.3.8 सूत्र से इत्संज्ञा होती है। अब शर्त यह है कि तिङ् और शित् प्रत्यय तभी सार्वधातुक होंगे, जब ये 'धातोः' के अधिकार में पढ़े गये हों। अन्यथा ये सार्वधातुक नहीं होंगे, जैसे – हरि + शस् = हरीन्। यहाँ 'शस्' प्रत्यय शित् है किन्तु 'धातोः' के अधिकार में नहीं होने से यह सार्वधातुक नहीं है। यदि यह सार्वधातुक होता तो 'सार्वधातुकमापित' सूत्र से ङिद्वत् भाव के कारण गुण होकर अनिष्ट रूप की सिद्धि कर देता। अब भू सत्तायाम् धातु से वर्तमाने लट् सूत्र द्वारा विहित लट् प्रत्यय का लकार (ल्) तथा उस लकार के स्थान पर कर्तृत्व की विपक्षा में प्रथम पुरुष में तिप् (ति) हुआ– भू+तिप्। अब उपर्युक्त सूत्र से 'तिप्' की सार्वधातुक संज्ञा हुई।

सूत्र – कर्तरि शप्।।3.1.68।।

वृत्ति – कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप्।

अर्थ – कर्ता अर्थ में सार्वधातुक प्रत्यय के परे होने पर धातु से परे 'शप्' प्रत्यय हो। 'शप् के शकार और पकार की इत्संज्ञा हो जाती है।

व्याख्या – 'कर्तरि' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'शप्' प्रथमा विभक्ति एकवचन। धातोः (धातोरेकाचो हलादेः0' से अधिकृत), प्रत्ययः, परश्च दोनों अधिकृत हैं। सार्वधातुके ('सार्वधातुके यक्' से)। 'भू+ति' यहाँ 'ति' सार्वधातुक है और वह 'भू' धातु से परे है तथा लट् स्थानिक होने से कर्ता अर्थ में (कर्तरि) विद्यमान है। अतः 'भू' धातु से परे 'ति' सार्वधातुक होने से 'भू' धातु से परे 'शप्' प्रत्यय होकर – भू+शप्+ति हुआ। शप् के शकार, पकार की क्रमशः 'लशक्वतद्धिते' एवं 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा, 'तस्य लोपः' से दोनों (श् एवं प्) का लोप होकर – भू+अ+ति आया।

सूत्र – सार्वधातुकार्धधातुकयोः।।7.3.84।।

वृत्ति – अनयोः परयोरिगन्ताङ्स्य गुणः। अवादेशः। भवति। भवतः।

अर्थ – सार्वधातुक (प्रत्यय) या आर्धधातुक (प्रत्यय) परे होने पर (इकः) इगन्त अङ्ग के स्थान पर गुण हो जाता है।

व्याख्या – 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'गुणः' प्रथमा विभक्ति एकवचन (मदेर्गुणः से), 'अङ्गस्य' षष्ठी विभक्ति एकवचन (अधिकृत है), 'इको गुणवृद्धी' सूत्र से 'इक्' पद उपस्थित होकर 'अङ्गस्य' का विशेषण बनता है तब विशेषण से तदन्तविधि होकर 'इगन्तस्य अङ्गस्य बनता है। अलोऽत्य परिभाषा से यह गुणादेश इगन्त अङ्ग (भू) के अन्त्य वर्ण (ऊ) के स्थान पर ही होता है।

'भू+अ+ति' यहाँ पर शप् का अकार शित् होने के कारण 'तिङ्शित्0' सूत्र से सार्वधातुक है। अतः इसके परे होने पर प्रकृतसूत्र से इगन्त अङ्ग (भू) के अन्त्य वर्ण 'ऊकार' को गुण

'ओकार' होकर – 'भो+अ+ति' हुआ। अब 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ओकार को 'अव्' आदेश होकर 'भवति' रूप सिद्ध होता है। यही प्रक्रिया द्विवचन में 'भवतः' की सिद्धि में भी रहती है। बस वहाँ रुत्व विसर्ग करना पड़ता है।

सूत्र – झोऽन्तः।।7.1.3।।

वृत्ति – प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तादेशः स्यात्। 'अतो गुणे' भवन्ति। भवसि। भवथः। भवथ।

अर्थ – प्रत्यय के अवयव झकार (झ्) के स्थान पर 'अन्त' आदेश होता है।

व्याख्या – 'झः' षष्ठी विभक्ति एकवचन, 'अन्तः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, तकारादकार उच्चारणार्थः। प्रत्ययस्य षष्ठी विभक्ति एकवचन (आयनेयीनीयियः फ ढ ख छ घां प्रत्ययादीनां) सूत्र से एकदेश स्वरित के बल से केवल 'प्रत्यय' अंश का अध्याहार होकर वचन विपरिणाम से 'प्रत्ययस्य' हो जाता है तब पूर्ण अर्थ स्पष्ट होता है। अब अर्थ हुआ – प्रत्यय के अवयव झकार के स्थान पर अन्त आदेश होता है, उदाहरणार्थ – प्रथमा के बहुवच 'भू+अ+झि' में प्रत्यय के अवयव 'झ्' के स्थान पर 'अन्त्' आदेश होकर – भू + अ अन्त् + इ > भो + अ + अन्त इ > भव् अ अन्त् इ > भव +अन्ति। अब 'अतोगुणे' से पररूप होकर भवन्ति बनता है।

सूत्र – अतो दीर्घो यञि।।7.3.101।।

वृत्ति – अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके। भवामि। भवावः। भवामः।

अर्थ – अदन्त अङ्ग के स्थान पर दीर्घ आदेश हो, यञादि सार्वधातुक परे हो तो।

व्याख्या – 'अतः' षष्ठी विभक्ति एकवचन, 'दीर्घः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'यञि' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'अङ्स्य' 6.1 (यह अधिकृत है)। सार्वधातुके सप्तमी विभक्ति एकवचन, (तरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके से)। अतः 'अङ्स्य' का विशेषण है। अतः दिन्त विधि होकर अदन्तस्य

अङ्स्य बन जाता है। 'यञि' यह 'सार्वधातुके' का विशेषण है। अतः 'यस्मिन्विधि0' इन परिभाषा से तदादि विधि होकर 'यञादौ सार्वधातुके' बन जाता है।

अलोऽन्त्यम् परिभाषा से यह दीर्घ कार्य अदन्त अङ्ग के अन्त्य वर्ण के स्थान पर होता है। 'भव+मि' यहाँ 'मि' यह ममादि है और सार्वधातुक भी। अतः सार्वधातुक 'मि' के परे रहते प्रकृत सूत्र 'यञादौ0' से अदन्त अङ्ग 'भव' को (अन्त्य अकार जो वकार के बाद में है) दीर्घ होकर 'भवामि' प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार अदन्त अङ्ग को दीर्घ करके उत्तम पुरुष द्विवचन में, 'वस्' प्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग करके, 'भवावः' एवं बहुवचन में 'मस्' प्रत्यय एवं रुत्व विसर्ग करके 'भवामः' रूप की सिद्धि होती है।

11.3 भू धातु लट् लकार के रूपों की सिद्धि प्रक्रिया

1) **भवति** – अकर्मक 'भू सत्तायाम्' धातु से 'लः कर्मणि भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में वर्तमान काल गम्यमान होने से 'वर्तमाने लट्' सूत्र द्वारा लट् प्रत्यय हुआ – भू +लट्। अकार, टकार का पूर्ववत् लोप होकर ('उपदेऽजनुनासिक इत्' से अनुनासिक अँ का एवं 'हलन्त्यम्' से 'ट्' का लोप) – भू+ल् बना। अब 'ल्' के स्थान पर 18 तिप् आदि प्रत्यय प्राप्त होते हैं। 'लः परस्मैपदम्' सूत्र से सबकी परस्मैपद संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु 'तङ्' प्रत्याहार के नौ प्रत्ययों की आत्मनेपद संज्ञा होती है। अतः शेष तिप् से लेकर मस् तक के नौ प्रत्ययों की 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' से परस्मैपद होकर प्रथम पुरुष एकवचन में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से तिप् प्रत्यय हुआ – भू+तिप्। पकार का हलन्त्यम् से लोप – भू+ति। अब कर्तृर्थक सार्वधातुक 'ति' के परे होने से भू धातु से 'कर्तरि शप्' सूत्र द्वारा शप् प्रत्यय हुआ – भू+शप्+ति। शकार, पकार की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप – भू+अ+ति। सार्वधातुक 'शप्' या 'ति' के परे रहने पर अलोऽन्त्य परिभाषा से भू के अन्त्य इक् (ऊ) को

गुण हुआ – भो + ऊ + ति। 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ओ को अव् आदेश – भव्+अ+ति = भवति रूप बना।

2) भवतः – पूर्ववत् 'भू' धातु से कर्तृत्व का विवक्षा में, वर्तमान काल की क्रिया से गम्यमान होने पर लट् लकार हुआ – भू+लट्। अनुबन्ध लोप – भू+ल् यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से लकार का भी लोप प्राप्त होता है किन्तु उच्चारण सामर्थ्य के कारण लोप नहीं होता। लकार के स्थान पर आत्मनेपद का निमित्त न होने के कारण एवं मध्यम और उत्तम पुरुष के निमित्त से हीन होने से 'शेषे प्रथमः' सूत्र द्वारा प्रथम पुरुष द्विवचन में तस् प्रत्यय हुआ– भू+तस्। अब कर्ता अर्थ में विद्यमान तस् सार्वधातुक के परे होने से भू धातु से शप् विकरण या प्रत्यय हुआ – भू+शप्+तस्। अनुबन्ध लोप – भू+अ+तस्। तस् के सकार की भी 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु तस् की 'विभक्तिश्च' सूत्र से विभक्ति संज्ञा हुई है और विभक्ति में स्थित तवर्ग, सकार और मकार की 'न विभक्तौ तुस्माः' सूत्र से इत्संज्ञा नहीं होती। अतः तस् के सकार का लोप भी नहीं होता है। अब भू+शप्+तस् > भू+अ+तस्। पुनः इगन्त अङ्ग भू को पूर्ववत् गुण – भो+अ+तस्। 'भो' के ओकार को अव् आदेश – भव्+अ+तस् = भवतस्। सकार को रुत्व विसर्ग होकर – भवतः रूप बना।

3) भवन्ति – पूर्ववत् 'भू' धातु से कर्तृत्व का विवक्षा में, वर्तमान काल में लट् प्रत्यय हुआ – भू+लट्। अनुबन्ध लोप होकर – भू+ल् हुआ। लकार के स्थान पर पूर्ववत् प्रथम पुरुष बहुवचन में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र द्वारा 'झि' परे होने के कारण धातु से परे शप् प्रत्यय – भू+शप्+झि। अनुबन्ध लोप होकर – भू+अ+झि, भू को गुण = भव् अ+झि। 'झोऽन्तः' सूत्र से झकार (झ्) के स्थान पर अन्त् आदेश – भव्+अ् अन्त् इ = भव्+अ्+अन्ति। अब 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र द्वारा प्राप्त दीर्घ आदेश की 'अतो गुणे' से बाध कर पररूप हो गया (अ+अ=अ) – भव+अन्ति = भवन्ति रूप सिद्ध हुआ।

4) भवसि – पूर्ववत् भू धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में वर्तमान काल में लट् प्रत्यय हुआ – भू + लट्। अनुबन्ध लोप होकर भू+ल् हुआ। अब लकार के स्थान पर परस्मैपद में, प्रथम पुरुष एवं उत्तम पुरुष के निमित्त से रहित 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से मध्यम पुरुष एकवचन में 'सिप्' प्रत्यय हुआ – भू+सिप्। पकार की इत्संज्ञा और लोप – भू+सि। कर्तर्थक सार्वधातुक 'सि' परे होने पर धातु से परे शप् प्रत्यय – भू+शप्+सि। अनुबन्ध लोप – भू+अ+सि। इगन्त अङ्ग को गुण – भो+अ+सि। अवादेश होकर भव्+अ+सि, 'भवसि' रूप सिद्ध हुआ।

5) भवथः – पूर्ववत् 'भू' धातु से कर्ता अर्थ में, वर्तमान काल में लट् प्रत्यय – भू+लट्। अनुबन्ध लोप – भू+ल्। लकार के स्थान पर परस्मैपद में, मध्यमपुरुष द्विवचन में थस् प्रत्यय हुआ – भू+थस्। थस् के सकार के विभक्तिस्थ होने से इत्संज्ञा का निषेध। कर्तर्थक सार्वधातुक थस् परे होने से भू धातु के परे शप् – भू+शप्+थस्। शप् के अनुबन्ध लोप होने पर – भू+अ+थस्। पूर्ववत् इगन्त अङ्ग को गुण, अव् आदेश एवं सकार को रुत्व विसर्ग होकर भवथः रूप बना।

6) भवथ – पूर्ववत् यहाँ भी समस्त प्रक्रिया भवथः की ही भाँति होती है। यहाँ पर भू धातु से थ प्रत्यय होता है। रुत्व विसर्ग का स्थल न होने से सीधे 'भवथ' रूप बन जाता है।

7) भवामि – यहाँ भी पूर्ववत् भू धातु से कर्ता अर्थ में, वर्तमान काल में लट् प्रत्यय हुआ – भू+लट्। अनुबन्ध लोप – भू+ल्। लकार के स्थान पर परस्मैपद में, उत्तम पुरुष में (अस्मद्युत्तमः सूत्र से), एकवचन में मिप् प्रत्यय हुआ – भू+मिप्। पकार की इत्संज्ञा और लोप – भू+मि। कर्तर्थक सार्वधातुक 'मि' के परे होने पर धातु से परे शप् प्रत्यय – भू+शप्+मि। अनुबन्ध लोप होकर – भू+अ+मि। इगन्त अङ्ग को गुण, अव् आदेश – भो+अ+मि, भव्+अ्+मि, भव+मि। अब चूँकि 'मि' का प्रथम वर्ण मकार 'यञ्' प्रत्याहार का है। अतः 'अतो दीर्घो यञि'

सूत्र द्वारा अदन्त अङ्ग 'भव' के अन्त्य अकार को 'अलोऽन्त्यस्य' परिभाषा से दीर्घ होकर 'भवामि' रूप सिद्ध हुआ।

8) भवावः – पूर्ववत् भू धातु से कर्ता अर्थ विद्यमान होने पर, वर्तमान काल में लट् प्रत्यय – भू+लट्। अनुबन्ध लोप – भू+ल्। लकार के स्थान पर परस्मैपद उत्तम पुरुष से द्विवचन में वस् प्रत्यय आया – भू+वस्। अब कर्तर्थक सार्वधातुक वस् के परे रहते पूर्ववत् भू धातु से परे शप् प्रत्यय हुआ – भू+शप्+वस्। शप् के अनुबन्धों को लोप होकर – भू+अ+वस्। वस् के सकार की विभक्तिस्थ होने के कारण इत्संज्ञा नहीं हुई। पुनः 'भू+अ+वस्' का स्थिति में इगन्त अङ्ग 'भू' के 'ऊ' को गुण् अव् आदेश और सकार को रुत्व विसर्ग कार्य होकर भवावः रूप सिद्ध हुआ।

9) भवामः – भू धातु से पूर्ववत् लट् लकार – भू+लट। अनुबन्ध लोप होकर भू+ल्। लकार के स्थान पर परस्मैपद, उत्तमपुरुष, बहुवचन में (बहुषु बहुवचनम् से) मस् प्रत्यय – भू+मस्। अब पूर्ववत् शप् प्रत्यय, इगन्त अङ्ग को गुण तथा सकार को रुत्व विसर्ग होकर – भवामः रूप बना।

11.4 भू धातु लिट् लकार की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्र

सूत्र – परोक्षे लिट्।।3.2.115 ।।

वृत्ति – भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्। लस्य तिबादयः।

अर्थ – अनद्यतन परोक्षभूत अर्थ में स्थित धातु से लिट् हो। यहाँ भी लकार के स्थान पर तिप्, तस् आदि प्रत्यय हो जायेंगे।

व्याख्या – 'परोक्ष' और 'अनद्यतने' पद सप्तमी एकवचन में है। 'लिट्' प्रथमा एकवचन में है। 'भूते' यह अधिकृत है। 'धातोः' भी पूर्ववत् ही अधिकृत है। सूत्र का अभिप्राय यह हुआ कि

यदि अनद्यतन परोक्षभूत अर्थ विद्यमान हो तो धातु से परे लिट् लकार हो। अनद्यतन का अर्थ है – जो आज का न हो 'न अद्यतनम् अनद्यतनम्।' यह ऐसा भूतकाल है, जो आज का न हो क्योंकि 'देवदत्त ने आज प्रातः भोजन किया' में भी भूतकाल है किन्तु यह आज का (अद्यतन) भूतकाल है। अतः यहाँ लिट् नहीं होगा। लिट् होने में एक और भी शर्त है वह है उसका परोक्ष होना। भूत 'अनद्यतन' होने के साथ ही 'परोक्ष' भी हो, तभी लिट् होगा अन्यथा लङ् होगा। परोक्ष का सामान्य अर्थ है – जो नेत्रादि इन्द्रियों के ज्ञान से दूर की घटना हो। पुनः गत रात्रि के बारह बजे से लेकर आगामी रात्रि के बारह बजे तक का काल अद्यतन होगा। इससे भिन्न अनद्यतन होता है।

इस प्रकार 'भू सत्तायाम' धातु से अनद्यतन-परोक्ष-भूतकाल गम्यमान होने पर लिट् हुआ। 'भू+लिट्' और पूर्ववत् अनुबन्ध लोप होकर – 'भू+ल्' हुआ।

सूत्र – परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः।।3.4.82।।

वृत्ति – लिटस्तिबादीनां नवानां णलादयः स्युः। 'भू अ' इति स्थिते–

अर्थ – लिट् (ल्) के स्थान पर आदेश किये जाने वाले परस्मैपद संज्ञक तिप् तस् आदि नौ प्रत्ययों के स्थान पर क्रमशः णल्, अतुस्, उस्, थल्, अथुस्, अः णल्, व, म ये नौ आदेश हो जाते हैं।

व्याख्या – लिट् के स्थान पर होने वाले परस्मैपद संज्ञक प्रत्यय नौ हैं। इनके स्थान पर क्रमशः णल् आदि आदेश भी नौ ही हैं। अतः यथासंख्य परिभाषा से ये आदेश क्रमशः होते हैं अर्थात् पहले के स्थान पर पहला, दूसरे को दूसरा और इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए।

ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ सर्वादेश ('अनेकाल् शित्सर्वस्य' सूत्र से) होने से सम्पूर्ण 'तिप्' आदि के स्थान पर सम्पूर्ण 'णल्' आदि आदेश होता है। यहाँ यह शंका होती है कि

'नान बन्धकृत0' परिभाषा से 'णल्' में अनुबन्ध लोप के पश्चात् अनेकाल् न होने से यह सम्पूर्ण स्थानी के स्थान पर कैसे होगा? तो समाधान यह है कि 'तिप्' के स्थान पर आदेश होने के बाद ही यह प्रत्यय बनता है और प्रत्यय बनने के बाद ही णकार और लकार अनुबन्ध का लोप होता है। अतः आदेश के समय यह सर्वादेश ही होता है। पुनः यह प्रश्न उठता है कि 'थ' के स्थान पर (म0पु0) होने वाला 'अ' आदेश तो अनेकाल् है नहीं। अतः यह कैसे सर्वादेश होगा? इसका समाधान यह है कि महाभाष्यकार ने 'अ+अ' को प्रारूप करके 'अ' को माना है। अतः यह अनेकाल् होने से सर्वादेश ही होगा। अब 'भू+ति > भू+णल् > भू +अ' यह स्थिति हुई।

सूत्र – भुवो वुग् लुङ्लिटोः।।6.4.88।।

वृत्ति – भुवो वुगागमः स्याल्लुङ्लिटोरचि।

अर्थ – 'भू' को 'वुक्' का आगम हो, लुङ् (लकार) या लिट् (लकार) सम्बन्धी अच् परे हो तो।

व्याख्या – 'भुवः' षष्ठी एकवचन, 'वुक्' प्रथमा एकवचन, 'लुङ्लिटोः' षष्ठी द्विवचन और 'अचि' सप्तमी एकवचनान्त है। 'अङ्गस्य' का अधिकार पूर्ववत् है। 'भू' को वुक् आगम करना है। यह वुक् आगम कित् है। अतः 'आद्यन्तौटकितौ' से 'भू' के अन्त में आयेगा। भू के बाद में लिट् लकार स्थानी अच् 'अ' (णल् का 'अ') विद्यमान है। अतः प्रकृत सूत्र से वुक् आगम हुआ। यह वुक् आगम मित्रवत् होकर जुड़ जाता है। 'भू+वुक्+अ' > भूव्+अ (अनुबन्ध लोप करने पर)। यहाँ पर वुक् आगम के साथ ही 'अचोञ्णिति' से वृद्धि भी प्राप्त थी किन्तु नित्य विधि होने से वुक् आगम हो जाता है और गुण-वृद्धि आदि कार्य नहीं होते हैं। अब अग्रिम सूत्र से द्वित्व किया जा रहा है –

सूत्र – लिटि धातोरनभ्यासस्य।।6.1.8।।

वृत्ति – लिटि परेऽनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः, आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य। 'भूव् भूव् अ' इति स्थिते –

अर्थ – लिट् परे होने पर अनभ्यास धातु के अवयव प्रथम एकाच् को द्वित्व हो जाता है परन्तु यदि धातु का आदिभूत (पहला अक्षर) अच् हो तो उससे परे दूसरे एकाच् भाग को द्वित्व होता है।

व्याख्या – 'लिटि' सप्तम्यन्त एकवचन, 'धातोः' षष्ठ्यन्त एकवचन, 'अनभ्यासस्य' षष्ठ्यन्त एकवचन है। 'एकाचो द्वे प्रथमस्य', 'अजादेर्द्वितीयस्य' इन दो के अधिकार पीछे से ही आ रहे हैं। 'अनभ्यासस्य' यह 'धातोः' का विशेषण है। द्वित्व होने के बाद ही 'पूर्वोभ्यासः' सूत्र से अभ्यास संज्ञा होती है। अब सूत्र का निष्कर्ष यह निकलता है कि – (क) लिट् परे होने पर धातु के प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है। (ख) यदि धातु का पहला वर्ण स्वर है, तो उसके द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है, जैसे गम् धातु में द्वित्व 'गम्' इस प्रथम एकाच् को हुआ किन्तु 'ऊर्णुनाव' यहाँ 'ऊर्ण' धातु अजादि है, अतः द्वितीय एकाच् 'र्णु' को द्वित्व हुआ। अब 'भूव्+अ' यहाँ पर प्रकृतसूत्र 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' से 'भूव्' को व्यपदेशिवद्भाव से प्रथम एकाच् मानकर द्वित्व हुआ – 'भूव् भूव्+अ।

सूत्र – पूर्वोऽभ्यासः ।।6.1.4 ।।

वृत्ति – अत्र ये द्वि विहिते तयोः पूर्वोऽभ्याससंज्ञः स्यात्।

अर्थ – इस प्रकरण में जो दो उच्चारण (भूव् भूव्) कहे गये हैं, उनमें पूर्व अभ्यास संज्ञक हो।

व्याख्या – 'एकाचो द्वे प्रथमस्य' के अधिकार में जो दो उच्चारण किये गये हैं, उनमें से पहला अभ्यास संज्ञा वाला हो। यहाँ 'भूव् भूव् अ' में 'भूव' को द्वित्व किया गया है। अतः पहला 'भूव' अभ्यास संज्ञक हुआ। अब आगे के सूत्र में अभ्यास संज्ञा का प्रयोजन बताते हैं –

सूत्र – हलादिः शेषः ।।7.4.60।।

वृत्ति – अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते, अन्ये हलो लुप्यन्ते। इति वलोपः।

अर्थ – अभ्यास का आदि हल् शेष रहता है, अन्य हल् लुप्त हो जाते हैं।

व्याख्या – 'हल्' प्रथमा एकवचन, 'आदिः' प्रथमा एकवचन, 'शेषः' प्रथमा एकवचन, 'अभ्यासस्य' ('अत्र लोपोऽभ्यासस्य' से) षष्ठी एकवचनान्त है। सूत्र का अभिप्राय है कि जिसकी अभ्यास संज्ञा हुई है, ऐसे प्रथम 'भूव्' के आदि हल् का शेष रहता है और अन्य हल् (व्) का लोप हो जाता है। अब 'भूव् भूव्+अ' में प्रथम भूव् का आदि हल् (भू) बचा रहता है तथा दूसरे हल् वकार (व्) का लोप हो जाता है। तो 'भू भूव्+अ' हुआ। अग्रिम सूत्र –

सूत्र – ह्रस्वः ।।7.4.59।।

वृत्ति – अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात्।

अर्थ – अभ्यास के अच् के स्थान पर ह्रस्व आदेश हो।

व्याख्या – 'अभ्यासस्य' षष्ठी एकवचनान्त (पूर्ववत् अधिकृत), 'ह्रस्वः' प्रथमा एकवचनान्त। जहाँ ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत का विधान किया जाता है, वहाँ अचश्च (1.2.28) सूत्र से 'अचः' पद उपस्थित हो जाता है। अब अर्थ हुआ – अभ्यास के अच् के स्थान पर ह्रस्व आदेश हो तो 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा के 'भू' के दीर्घ 'ऊ' के स्थान पर ह्रस्व 'उ' आदेश होकर – 'भु भूव् + अ' हुआ।

सूत्र – भवतेरः ।।7.4.73।।

वृत्ति – भवतेरभ्यासोकारस्य स्याल्लिटि।

अर्थ – लिट् परे होने पर 'भू' धातु के अभ्यास के 'उकार' के स्थान पर 'अ' आदेश हो।

व्याख्या – 'भवतेः' षष्ठी एकवचन, 'अः' प्रथमा एकवचन, 'लिटि' सप्तमी एकवचन, ('व्यथो लिटि' से)। 'अभ्यासस्य' षष्ठी एकवचनान्त। यहाँ भवति का अभिप्राय है – भू धातु। धातु के स्वरूप को बताने के लिए 'इक्' और 'श्तिप्' प्रत्यय लगाया जाता है – 'इक्श्तिपौ धातु निर्देशे' (3.3.108 पर वार्तिक)। यहाँ पर 'श्तिप्' प्रत्यय लगा है। अब 'भु भूव + अ' > भ भूव् + अ। अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

सूत्र – अभ्यासे चर्च।।8.4.54।।

वृत्ति – अभ्यासे झशां चरः स्युर्जशश्च। झशां जशः खयां चर इति विवेकः। बभूव। बभूवतुः। बभूवुः।

अर्थ – अभ्यास में झल् के स्थान पर जश् और चर् आदेश होते हैं।

व्याख्या – 'अभ्यासे' सप्तमी एकवचन, 'चर्' प्रथमा एकवचन, 'च' इति अव्यय पदम्, 'झलाम्' षष्ठी बहुवचन, ('झलां जश् झशि' से)। 'च' के कारण 'झलां जश् झशि' से जश् का – समुच्चय होता है। अब अर्थ हुआ – (अभ्यासे) अभ्यास में (झलाम्) झलों के स्थान पर (चर्) – 'चर्' (च) और 'जश्' हो जाते हैं। झल् प्रत्याहार में सभी वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा श्, ष् स् ह् – कुल 24 वर्ण आते हैं। उन्हीं के स्थान पर 'चर्' और 'जश्' आदेश होते हैं। चर् प्रतयाहार में वर्गों के प्रथम एवं श् ष् स् वर्ण तथा जशों में वर्गों के तृतीय वर्ण आते हैं। अब श् ष् स् के स्थान पर तो श् ष् स् ही आदेश होते हैं। हकार (ह्) के स्थान पर विशेष सूत्र 'कुहोश्चुः' सूत्र की प्रवृत्ति होती है। शेष 20 वर्णों में किसके स्थान पर कौन सा आदेश हो इसके लिए 'स्थानेऽन्तरतमः' सूत्र से आन्तर्य देखा जाता है। यहाँ अभ्यासगत चतुर्थ वर्ण को उसी वर्ग का तृतीय वर्ण आदेश होता है; तृतीय वर्ण को उसी वर्ग का तृतीय वर्ण होता है; अभ्यासगत द्वितीय वर्ग को उसी वर्ग का प्रथम वर्ण हो जाता है; अभ्यासगत वर्गों के प्रथम वर्ण को उसी वर्ण का प्रथम वर्ण हो जाता है; अभ्यासगत् श् ष् स् को क्रमशः वही श्

ष् स् ही आदेश होता है तथा अभ्यासगत हकार के स्थान पर कुहोश्चुः' सूत्र से प्रथम झकार हो जाता है। पुनः झकार को जकार आदेश होता है। अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि अभ्यास में वर्ग के पहले और दूसरे वर्ण को पहला वर्ण और तृतीय, चतुर्थ को तृतीय वर्ण आदेश हो जाता है। यथा – 'भ भूव् +अ'। यहाँ अभ्यास के भ् (चतुर्थ वर्ण) को तृतीय वर्ष (ब्) आदेश होकर – बभूव+अ = 'बभूव' रूप बना। इसी प्रकार द्विवचन में तस् को अतुस् होकर बभूवतुः और 'झि' को उस् आदेश होकर बभूवुः प्रयोग बनता है।

सूत्र – लिट् च।।3.4.115।।

वृत्ति – लिडादेशस्तिङार्धधातुकसंज्ञः।

अर्थ – लिट् के स्थान पर आदेश किया गया तिङ् आर्धधातुक संज्ञक हो।

व्याख्या – यह ध्यान देने की बात है कि तिङन्त प्रकरण में एकसंज्ञा का अधिकार नहीं है (अकाडारादेका संज्ञा)। अतः एक की दो संज्ञायें भी हो सकती हैं। लिट् के स्थान पर आये हुए तिङ् की इस सूत्र से आर्धधातुक संज्ञा तथा 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा भी प्राप्त थी, परन्तु 'एवं' की अनुवृति (लङः शाकटायनस्यैव से) आने से केवल आर्धधातुक संज्ञा ही हुई है, सार्वधातुक नहीं। अब आर्धधातुक करने का फल अग्रिम सूत्र में बता रहे हैं –

सूत्र – आर्धधातुकस्येड्वलादेः।।7.3.35।।

वृत्ति – वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात्। बभूविथ। बभूवथुः। बभूव। बभूव। बभूविव। बभूविम।

अर्थ – वलादि (जिसके आदि में वल् प्रत्याहार का कोई वर्ण हो, ऐसा) आर्धधातुक को इट् का आगम हो।

व्याख्या – 'आर्धधातुकस्य' और 'वलादेः' षष्ठी एकवचनान्त तथा 'इट्' एकवचन (प्रथमा) में है। टित् होने से इट् आगम आर्धधातुक के पहले होता है ('आद्यन्तौ टकितौ' से), जैसे – भू धातु से लिट् हुआ। अनुबन्ध लोप होकर – 'भू+ल्' बना। लकार के स्थान पर मध्यम पुरुष एकवचन में 'सिप् हुआ – 'भू+सिप्'। सिप् के स्थान पर 'थल्' आदेश – भू+थल्, अनुबन्धलोप – भू+थ। अब 'भ' भी सिप् स्थानी होने के कारण लिट्त्व धर्म से युक्त है। अतः प्रकृत सूत्र से आर्धधातुक होने के कारण उसके पहले इट् का आगम हुआ – भू इट् य, अनुबन्ध लोप भू इट्। अब पूर्वोक्त सूत्रों से द्वित्व, अभ्यास आदि कार्य होकर – 'बभूविथ' प्रयोग सिद्ध हुआ। इसी प्रकार द्विवचन और बहुवचन में क्रमश थस् को 'अथुस्' एवं थ को 'अ' आदेश होकर – बभवथुः और बभूव बनता है। पुनः उत्तम पुरुष में मिप् को णल्, वस् को व और मस् को म आदेश होकर क्रमशः बभूव, बभूविव और बभूविम प्रयोग बनता है।

यहाँ तक 'भू' धातु के 'लट्' लकार एवं 'लिट्' लकार की सिद्धि में उपयोगी सूत्रों की व्याख्या की गयी है। अब इन दोनों लकारों की रूप-सिद्धि-प्रक्रिया भी संक्षेप में आवश्यक है, जो आगे दी जा रही है।

11.5 भू धातु लिट् लकार के रूपों की सिद्धि प्रक्रिया

1) **बभूव** – भू सत्तायाम् धातु से कर्ता अर्थ में परोक्ष, अनद्यतन, भूत अर्थ में 'परोक्षे लिट्' सूत्र से लिट् लकार हुआ – भू+लिट्। अनुबन्ध लोप, लकार के स्थान पर परस्मैपद में, प्रथम पुरुष एकवचन में 'तिप्' प्रत्यय हुआ – भू+तिप्। चूँकि यहाँ 'तिप्' की सार्वधातुक संज्ञा नहीं होती अपितु 'लिट् च' से आर्धधातुक संज्ञा होती है। अतः सार्वधातुक संज्ञा न होने पर भू से परे 'कर्तरि शप्' सूत्र से शप् भी नहीं होता है। अब तिप् के स्थान पर 'परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः' सूत्र से 'णल्' आदेश हुआ – भू+णल्। णल् में णकार, लकार की क्रमशः 'चुटू' और 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप – भू+अ। पुनः 'भुवो

वुग् लिङ्लिटोः' सूत्र से भू को वुक् का अवशिष्ट वकार (व्) भू के अन्त में आया – भूव्+अ। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' सूत्र से भूव् को द्वित्व हुआ – भूव् भूव+अ। 'पूर्वोऽभ्यासः' सूत्र से पूर्व वाले भूव् की अभ्यास संज्ञा हुई और अभ्यास का आदि हल् (भ्) शेष रहा और शेष हल् (व्) लुप्त हो गया ('हलादिः शेषः' से) – भू भूव्+अ। 'ह्रस्वः' सूत्र से अभ्यास के दीर्घ अकार को ह्रस्व आदेश – भु भूव्+अ। 'भवतेरः' सूत्र से 'भु' के उकार को अकार आदेश – भ भूव्+अ। अब 'अभ्यासे चर्च' से 'झश्' (भकार) के स्थान पर 'जश्' (वकार) होकर – बभूव प्रयोग सिद्ध हुआ।

2) **बभूवतुः** – पूर्ववत् भू धातु से कर्ता अर्थ में परोक्ष, अनद्यतन, भूत अर्थ में लिट् प्रत्यय हुआ – भू+लिट्। अनुबन्ध लोप होकर लकार के स्थान में, प्रथम पुरुष द्विवचन में 'तस्' के स्थान पर 'अतुस्' आदेश हुआ – भू+अतुस्। पूर्व अतुस् की सार्वधातुक संज्ञा का निषेध होकर – भू से परे अतुस् के विभक्तिस्थ होने के कारण इत्संज्ञा का निषेध। भू को पूर्ववत् वुक् आगम, अनुबन्ध लोप और द्वित्व कार्य होकर – भूव् भूव्+अतुस्। पूर्व भूव् की अभ्यास संज्ञा, अभ्यास के शेष हल् लकार का लोप – भू भूव् अतुस्। 'ह्रस्वः' सूत्र से दीर्घ 'अ' को ह्रस्व – भु भूव्+अतुस्। पूर्ववत् उकार को 'अ' आदेश – भ भूव्+अतुस्। 'अभ्यासे चर्च' से भ् को ब् होकर एवं अतुस् के सकार को रुत्व, विसर्ग होकर – बभूवतुः रूप सिद्ध हुआ।

3) **बभूवुः** – पूर्ववत् भू धातु से कर्ता अर्थ में परोक्ष, अनद्यतन, भूत अर्थ गम्यमान होने के कारण लिट् लकार हुआ – भू+लिट्। यहाँ भी समस्त सिद्धि प्रक्रिया बभूवतुः की ही भाँति होगी। केवल बहुवचन में 'झि' के स्थान पर 'उस्' आदेश होकर, रुत्व विसर्ग होकर बभूवुः रूप बनता है।

4) **बभूविथ** – पूर्ववत् भू धातु से परोक्ष, अनद्यतन, भूत अर्थ में लिट् लकार होकर – भू+ँटि्। अनुबन्ध लोप होकर लकार के स्थान पर परस्मैपद में मध्यम पुरुष एकवचन में सिप् प्रत्यय

हुआ। पूर्ववत् 'सिप्' के स्थान पर 'परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः' सूत्र से 'थल्' आदेश – भू+थल्। अनुबन्ध लोप – भू+थ। अब चूँकि 'थ' की पूर्ववत् आर्धधातुक संज्ञा हुई है; अतः वलादि आर्धधातुक 'थ' के परे होने के कारण 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' सूत्र से 'थ' को इट् आगम, टित् होने के कारण 'थ' के आदि में इट् की स्थिति – भू+इट्+थ। अनुबन्ध लोप – भू+इथ। पूर्ववत् 'भू' को वुक् आगम, अनुबन्ध लोप और द्वित्व होकर – भूव्+भूव्+इथ हुआ। पूर्व भूव् की अभ्यास संज्ञा, वकार लोप, अभ्यास के अकार को ह्रस्व एवं उकार को अकार आदेश – भू भूव् इ थ। 'अभ्यासे चर्च' सूत्र से भू को ब् आदेश होकर – बभूविथ प्रयोग बना।

5) **बभूवथुः** – पूर्ववत् भू धातु से कर्ता अर्थ में परोक्ष, अनद्यतन, भूत अर्थ में लिट् लकार – भू+लिट्। अनुबन्ध लोप, परस्मैपद में मध्यम पुरुष द्विवचन में लकार के स्थान पर थस् प्रत्यय – भू+थस्। थस् के स्थान पर अथुस् आदेश – भू+अथुस्। अब आगे की समस्त प्रक्रिया बभूवतुः की भाँति होगी। केवल जहाँ बभूवतुः में अतुस् है, वहीं बभूवथुः में अथुस् होकर रूप-सिद्धि होती है।

बभूव, बभूव (उत्तम पुरुष एकवचन), बभूविव, बभूविम। यहाँ मध्यम पुरुष बहुवचन एवं उत्तम पुरुष के तीनों वचनों की प्रक्रिया संक्षेप में बतायी जा रही है। मध्यम पुरुष बहुवचन में 'अ' प्रत्यय होकर 'णल्' की भाँति ही रूप सिद्धि होगी। उत्तम पुरुष के एकवचन में भी णल् प्रत्यय होकर प्रथम पुरुष एकवचन की ही भाँति रूप बनकर बभूव होगा। उत्तम पुरुष द्विवचन में 'वस्' को 'व' आदेश होकर, इट् आगम होकर 'बभूविव' और बहुवचन में मस् के स्थान पर 'म' आदेश होकर बभूविम रूप बनता है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि यदि भू धातु से परे स्थित प्रत्ययों का आदि वर्ण वल् प्रत्याहार (म् को छोड़कर समस्त व्यंजन) का है, तो इट् आगम होगा और यदि आदि में वल् प्रत्याहार नहीं है, तो इट् का आगम भी नहीं होगा।

11.6 सारांश

उपर्युक्त खण्डों में भू धातु के परस्मैपद में लट लकार एवं लिट् लकार की विस्तृत रूप-सिद्धि बतायी गयी है। इसका विधिवत् अध्ययन करके छात्र उपर्युक्त दोनों लकारों के भवतः, भवन्ति, भवामि, बभूव, बभूवतुः, बभूविथ, बभूविम आदि रूपों की प्रक्रिया-विविधता को जान सकेंगे। इन्हीं के आधार पर भ्वादिगण की अन्य धातुओं की रूप-प्रक्रिया भी सुगमता से समझ सकेंगे। यह प्रकरण संस्कृत भाषा ज्ञान हेतु अत्यन्त आवश्यक है और इसी आधार पर तिङन्त का महात्म्य बतलाते हुए वार्तिककार – कात्यायन ने ''एकतिङ् वाक्यम्'' कहा है।

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15. वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी, गोरखपुर, गीताप्रेस।
16. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या गोविन्दाचार्य, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती।
17. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, धरानन्द, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास।
18. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, भीमसेन, लघुसिद्धान्तकौमुदी, (भाग–1–6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन।
19. शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय, (भाग–1–3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।
20. वरदराजाचार्य, सम्पा. एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, शिवालिक पब्लिकेशन।

11.8 अभ्यास प्रश्न

1. भवसि की रूप-सिद्धि सूत्रोल्लेख पूर्वक कीजिए।
2. 'अभ्यास' किसे कहते हैं? समझाइए।
3. 'लिट् च' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
4. 'बभूव' रूप की सिद्धि प्रक्रिया बताइए।
5. 'वर्तमाने लट्' सूत्र की व्याख्या कीजिए।
6. बभूवतुः की सिद्धि कीजिए।
7. बभूविव की सिद्धि कीजिए।

इकाई 12 भू धातु (परस्मैपद) लुट् और लृट् लकार

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भू धातु लुट् लकार की रूपसिद्धि प्रक्रिया को समझ पायेंगे।
- अन्य भ्वादिगणी धातुओं की लुट् प्रक्रिया को समझ पायेंगे।
- इस प्रकरण में प्रयुक्त सूत्रों का अर्थ ज्ञान कर सकेंगे।
- तिप् आदि के स्थान पर 'डा' आदि आदेशों की व्यवस्था कर सकेंगे।
- 'भविता' आदि पदों की रूपसिद्धि जान सकेंगे।
- 'स्य' आदि की व्यवस्था का ज्ञान कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई में अनद्यतन भविष्यत् एवं परोक्ष अनद्यतन भविष्यत् काल के वाचक लकारों का ज्ञान कराया गया है। यद्यपि पूर्व इकाई में रूपसिद्धि प्रक्रिया के अधिकांश सूत्र दिये जा चुके हैं, तथापि यहाँ पर शप् के स्थान पर लृट् में 'रूप' और लुट् में तासि प्रत्यय एक नयी प्रक्रिया का द्योतक है। यहाँ आर्धधातुक संज्ञा विधायक सूत्र 'आर्धधातुकं शेषः' का भी उल्लेख किया गया है। लुट् लकार के प्रथम पुरुष में 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' सूत्र द्वारा तिप्, तस, झि के स्थान पर क्रमशः डा, रौ, रस आदेश का भी उल्लेख किया गया है। इस प्रकरण में 'टि' संज्ञा का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है। शेष विस्तृत बोध प्रकरण की इकाई के अध्ययन से स्वयं होगा।

12.2 भू धातु के लुट् लकार की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्र

सूत्र – अनद्यतने लुट् ।। 3/3 /15।।

वृत्ति – भविष्यत्यनद्यतनेऽर्थे धातोर्लुट्।

अर्थ – अनद्यतन भविष्यत् क्रिया के अर्थ में वर्तमान धातु से लुट् प्रत्यय हो।

व्याख्या – 'अनद्यतने' सप्तम्यन्त, भविष्यति सप्तम्यन्त, लुट् प्रथमान्त, धातोः पूर्ववत् अधिकृत है। 'भविष्यति गम्यादयः' से 'भविष्यति' की अनुवृत्ति आती है। आने वाले समय को 'भविष्यत्' कहते हैं। भविष्यत् होते हुए भी जो आज का न हो, 'सः श्वो गृहं गन्ता।'

सूत्र – स्यतासी लुलृटोः ।।3/1 /33।।

वृत्ति – धातोः 'स्य-तासी' एतौ प्रत्ययौ स्तः, लृलुटोः परतः । शबाद्यपवादः। 'लृ' इति लृङ्लृटोर्ग्रहणम्।

अर्थ – लृ परे होने पर धातु से 'स्य' तथा लुट् परे होने पर धातु से 'तासि' प्रत्यय हो। यह सूत्र 'शप्' आदियों का अपवाद है। 'लृ' से यहाँ लृङ् और लृट् दोनों का ग्रहण होता है।

व्याख्या – इस सूत्र में मुख्यतः दो पद हैं'– 'स्यतासी' प्रथमा द्विवचनान्त और 'लृलुटोः' सप्तमी द्विवचनान्त। यह सूत्र 'कर्तरि शप्' से विहित 'शप्' प्रत्यय का बाध करके लगता है। 'लृ' कहने से लृट् और लृङ् दोनों लकारों का ग्रहण हो जाता है। यथासंख्य से लृ को 'स्म' और लुट् का 'तासि' आदेश होता है।

सूत्र – आर्धधातुकं शेषः ।। 3/4/114।।

वृत्ति – तिङ्शिद्भ्योऽन्यो धातोरिति विहितः प्रत्ययः एतत्संज्ञः स्यात्। इट्।

अर्थ – तिङ् और शित् से भिन्न 'धातोः' के अधिकार में (धातोः इस प्रकार कहकर) विधान किया हुआ प्रत्यय आर्धधातुक संज्ञक हो।

व्याख्या – इस सूत्र से पहले अष्टाध्यायी में 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' सूत्र पढ़ा गया है। उसमें 'तिङ्' और 'शित्' प्रत्ययों की सार्वधातुक संज्ञा की गयी है। इस सूत्र में की 'आर्धधातुकम्' 1/1 और 'शेषः' 1/1 ये दो पद ही हैं। इस सूत्र का अर्थ यह हुआ कि – 'धातु से लगने वाले तिङ् और शित् को छोड़कर जितने भी प्रत्यय हैं, उनकी आर्धधातुक संज्ञा हो।

सूत्र – लुटः प्रथमस्य डारौरसः ।। 2/4/85।।

वृत्ति – 'डा-रौ-रस्' एते क्रमात् स्युः। डित्त्वसामर्थ्याद्भस्यापि टेर्लोपः। भविता।

अर्थ – लुट् के प्रथम पुरुष के स्थान पर क्रमशः डा, रौ, रस् आदेश हों।

व्याख्या – 'लुटः' षष्ठी विभक्ति एकवचन, 'प्रथमस्य' षष्ठी विभक्ति एकवचन। प्रत्यय भी तीन हैं और आदेश भी तीन ही हैं। अतः यथासंख्य विधि से डा आदि आदेश (तिप् = डा, तस् = रौ, झि = रस्) होते हैं। पुनः भू + लट् **>** भू + ल्। भू + तिप् **>** भू + ति **>** भू + तास् + ति **>** भवितास् + ति। अब यहाँ भू से परे 'ति' के स्थान पर 'डा' आदेश हुआ– भवितास् + डा। 'चुटू' सूत्र से 'डा' के डकार की इत्संज्ञा और लोप– भवितास् + आ। चूँकि यह 'डा' तिप् के स्थान पर हुआ है अतः इसकी भी प्रत्यय संज्ञा हुई किन्तु यह स्वादियों के अन्तर्गत नहीं है। अतः इसके परे होने पर पूर्व (भवितास्) की भसंज्ञा नहीं होती और भसंज्ञा न होने से डित् (आ) के परे होने पर भी 'टेः' सूत्र से भवितास् की 'टि' 'आस्' का लोप नहीं हो सकता। इसका समाधान करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं–

"डित्त्वसामर्थ्याद् अथस्यापि टेर्लोपः" अर्थात् 'डा' को डित् करने के सामर्थ्य से भसंज्ञा न होने पर भी 'ति' का लोप हो जाता है। तात्पर्य यह है कि यदि 'टि' का लोप नहीं करते तो 'डा' को डित् करना निष्प्रयोजन हो जाता है। अब डित्करणसामर्थ्य से 'टि' का लोप होने में बाधा नहीं है तो 'टि' (आस्) को लोप होकर– भवितास् + आ **>** भवित् + आ **>** भविता प्रयोग सिद्ध हुआ।

नोट– यहाँ भवित् + आ की स्थिति में 'पुगन्तलघूपधस्य च' (1.1.6) सूत्र से लघूपध गुण प्राप्त होता है किन्तु दीधीवेवीटाम्' (1.1.6) सूत्र से निषेध हो जाता है। इसे सिद्वान्त कौमुदी में विस्तार से देखें।

<u>सूत्र –</u> तासस्त्योलोपः ।।7/4/50।।

<u>वृत्ति –</u> तासेरस्तेश्च सस्य लोपः स्यात् सादौ प्रत्यये परे।

<u>अर्थ –</u> सकारादि (जिसके आदि में स् हो) प्रत्यय परे होने पर 'तास्' और 'अस्' के सकार का लोप हो।

<u>व्याख्या –</u> 'तासस्त्योः' षष्ठी द्विवचनान्त, 'लोपः' प्रथमा एकवचनान्त। इस सूत्र में दो पद हैं। 'सः स्यार्धधातुके' से 'सि' की अनुवृत्ति आती है। अब अर्थ स्पष्ट हुआ 'तासि' प्रत्यय और 'अस्' धातु के सकार का लोप होता है, सकारादि प्रत्यय के परे होने पर। अस् धातु का उदाहरण अदादिगण में मिलेगा। ध्यान देने की बात है कि 'तासि' प्रत्यय है और 'अस्' धातु है। 'अलोऽन्त्य' परिभाषा से यह लोप अन्त्य अल् सकार का ही होता है।

<u>सूत्र –</u> रि च ।। 7/4/51 ।।

<u>वृत्ति –</u> रादौ प्रत्यये परे तथा। भवितारौ। भवितारः। भवितासि। भवितास्थः। भवितास्थ। भवितास्मि। भवितास्वः। भवितास्मः।

<u>अर्थ –</u> 'रि' सप्तम्यन्त, 'च' अव्ययपदम् द्विपदमिदं सूत्रम्। यहाँ भी 'रि' से तदादि विधि होकर 'रादौ प्रत्यये' बन जाता है। अब अर्थ हुआ– रेफादि (जिसके आदि में रेफ हो) प्रत्यय परे होने पर भी 'तास्' और 'अस्' के सकार का लोप हो।

<u>व्याख्या –</u> भू धातु लिट् लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में लकार के स्थान पर तस् प्रत्यय हुआ– भू+तस्। अब कर्त्तर्थक तस् की सार्वधातुक संज्ञा हुई। पुनः 'कर्तरि शप्' से प्राप्त 'शप्' का बाध करके 'स्यतासी लुलृटोः से 'तासि' प्रत्यय हुआ। अनुनासिक अच् लकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत्संज्ञा – भू+तास्+तस्। तास् धातु से विहित होने एवं तिङ्, शित् से भिन्न होने के कारण 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक संज्ञक हुआ। अब 'आर्धधातुकस्येड्वलादे': से तास् को इट् आगम– भू+इट्+तास्+तस् **>** भू+इ+तास्+तस्।

'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से भू को गुण– भो+इ+तास्+तस्; 'ओ' को एचोऽयवायावः' से गुण– भव्+इ+तास्+तस्। भवि+तास्+तस् **>** 'भवितास्+तस्'। अब तस् के स्थान पर 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' से 'रौ' आदेश – भवितास्+रौ। अब 'रि च' सूत्र से तास् के सकार का लोप होकर 'भवितारौ' रूप बना।

प्रथमा के बहुवचन की सिद्वि में 'झि' के स्थान पर 'रस्' आदेश होकर शेष प्रक्रिया पूर्ववत् ही होगी। आगे मध्यम एवं उत्तम पुरुष की सिद्धि भी पूर्वोक्त सूत्रों के माध्यम से होगी, जो सिद्धि खण्ड में सविस्तार बताये जायेंगे।

12.3 भू धातु के लुट् लकार के रूपों की सिद्धि प्रकिया

1. **भविता** – 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्त्ता अर्थ में अनद्यतन भविष्यत् काल अर्थ गम्यमान होने पर 'अनद्यतने लुट्' सूत्र से धातु से लुट् प्रत्यय हुआ– भू+लुट्। अनुबन्ध 'उकार' का 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से तथा 'टकार' का 'हलन्त्यम्' सूत्र से लोप होकर 'तस्य लोपः' से उसका लोप हुआ भू+ल्। अब लकार के स्थान पर आत्मनेपद के निमित्तों से रहित होने पर 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' से परस्मैपद के क्रम में मध्यम और उत्तम पुरुष का भाव विद्यमान न होने से 'शेषे प्रथमः सूत्र' द्वारा प्रथम पुरुष में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' से एकवचन में लकार के स्थान पर प्राप्त 18 तिङ् प्रत्ययों में से 'तिप्' प्रत्यय हुआ– भू+तिप्। तिप् की – 'तिङ शित्सार्वधातुकम्' से सर्वाधातुक संज्ञा हुई और 'कर्तरि शप्' से शप् की प्राप्ति होने लगी किन्तु 'स्यतासी लृलुटोः' से बाध होकर शप् के स्थान पर तासि प्रत्यय हुआ– भू+तासि+ति, तसि के इकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से इत्संज्ञा और लोप होकर– भू+तास्+ति रूप बना (तिप् के पकार की भी इत्संज्ञा और लोप)। अब

'तास्' धातु से विहित है तथा तिङ् और शित् से भिन्न भी है, अतः 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक संज्ञा हुई और 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः'सूत्र से तास् को इट् आगम हुआ; टित् होने के कारण वह तासि के पहले हुआ– 'भू+इट्+तास्+ति' टकार अनुबन्ध का लोप– भू+इ+तास्+ति। भू+इ की स्थिति में इगन्त अङ् 'भू' को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण हुआ– भो+इ; 'एचोऽयवायावः' सूत्र से 'ओ' को 'अव्' होकर– भव्+ इ**>**भवि बना। भवि+तास्+ति। अब लकारस्थानी 'ति' के स्थान पर 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' से डा आदेश हुआ– भवितास्+डा **>**भवितास्+आ (डकार की 'चुटू' से इत्संज्ञा और लोप)। भवितास् में अन्त्य अच् है 'ता' का आकार और वह 'स्' के आदि में है। अतः 'अचोऽन्त्यां' सूत्र से 'आस्' की 'टि' संज्ञा और डित्वसामर्थ्य, से भसंज्ञा न होने पर भी 'टेः' सूत्र से टिसंज्ञक 'आस्' का लोप हुआ– भवित्+आ। पुनः वर्णसम्मेलन होने पर 'भविता' रूप बना।

2. **भवितारौ** – पूर्ववत् भू धातु से अनद्यतन भविष्यत् काल गम्यमान होने पर कर्तृत्व को विवक्षा में 'अनद्यतने लुट्' सूत्र से लुट् प्रत्यय का विधान हुआ– भू+लुट्। अनुबन्ध लोप होकर भू + ल् बना। लकार के स्थान पर 'तिप-तस्-झि०' सूत्र से 18 तिङ् प्रत्ययों की प्राप्ति हुई उसमें परस्मैपद संज्ञक प्रथम नौ प्रत्ययों में से 'तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः' सूत्र द्वारा प्रत्येक त्रिक की क्रमशः प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष एवं उत्तम पुरुष संज्ञा हुई। अब मध्यम पुरुष एवं उत्तम पुरुष का विषय न होने से 'शेषे प्रथमः' सूत्र द्वारा प्रथम पुरुष द्विवचन में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से 'तस्' प्रत्यय हुआ– भू+तस्। पुनः कर्ता अर्थ में विद्यमान लकारस्थानी तस् की 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' सूत्र द्वारा सार्वधातुक संज्ञा हुई और 'कर्तरि शप्' से शप् प्राप्त हुआ किन्तु उसका बाध कर

'स्यतासी लृलुटोः' से 'तासि' प्रत्यय हुआ– भू+तासि+तस्। तासि के इकार का अनुनासिकत्वेन लोप– भू+तास्+तस्। भू धातु से वलादि आर्धधातुक (तास्) परे होने के कारण 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से तास् को इट् आगम, टित् होने से वह तास् का आदि अवयव हुआ– भू+इ+तास्+तस्। अब 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग 'भू' को गुण– भो+इ+तास्+तस्। पुनः 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अव् आदेश होकर– भव्+इ+तास्+तस् हुआ। भवितास्+रौ। 'रि च' सूत्र से तास् के सकार का लोप होकर 'भवितारौ' रूप सिद्ध हुआ।

3. **भवितारः** – भू धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र से अनद्यतन भविष्यत् अर्थ होने पर 'अनद्यतने लुट् लकार हुआ– भू+लुट् । अनुबन्ध लोप होकर– भू+ल् । लकार के स्थान पर पूर्ववत् 10 तिङ् प्रत्यय हुए। यहाँ आत्मनेपद के निमित्त से हीन धातु से परस्मैपद में, मध्यम पुरुष एवं उत्तम पुरुष का विषय न होने के कारण 'शेषे प्रथमः' से प्रथम पुरुष में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र से बहुवचन में 'झि' प्रत्यय हुआ– भू+झि। कर्तथक सार्वधातुक 'झि' के परे रहते 'कर्तरि शप्' सूत्र से प्राप्त शप् का 'स्यतासी लुलृटोः' सूत्र से बाध होकर 'तास्' प्रत्यय हुआ– भू+तास्+झि। अब भू धातु से बलादि आर्धधातुक तास् (पूर्ववत् इकार लोप) के परे होने पर 'आर्धधातुकस्येडवलादेः' सूत्र से 'तास्' को इट् आगम, टित् होने से पूर्व में आकर– भू+इट्+तास्+झि। इट् के टकार को इत्संज्ञा और लोप– भू+इ+तास्+झि। इगन्त अंग को गुण– भो+इ+तास्+तस् **>** गुण होकर **>** भवितास् + झि। अब 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' से झि के स्थान पर 'रस्' आदेश– भवितास्+रस्। अब 'रि च' सूत्र से

भवितास् के सकार का लोप होकर एवं 'रस्' के सकार को रुत्व विसर्ग होकर <u>भवितारः</u> प्रयोग सिद्ध हुआ।

4. **भवितासि** – पूर्वतव् 'भू' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्ता अर्थ में 'अनद्यतने लुट्' लकार का विधान हुआ– भू+लुट्। अनुबन्ध का लोप होकर– भू+ल् बना। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद में, प्रथम पुरुष एवं उत्तम पुरुष का विषय न होने के कारण मध्यम पुरुष में 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से मध्यम पुरुष एकवचन में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' से 'सिप्' प्रत्यय हुआ– भू+सिप्, पकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप– भू+सि। अब कर्तर्थक सार्वधातुक 'सि' के परे रहते 'कर्तरि शप्' से प्राप्त शप् का बाध करके 'स्यतासी लृलुटोः' सूत्र से तासि प्रत्यय हुआ – भू+तासि+सि। तासि के अनुनासिक इकार को इत्संज्ञा और लोप– भू+तास्+सि। 'भू' से परे वलादि आर्धधातुक 'तास्' को 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' से इट् आगम, अनुबन्ध लोप एवं तास् का आदि अवयव होकर– भो+इ+तास्+सि। इगन्त अंग भू को गुण, ओकार को अव् आदेश होकर– भो+इ+तास्+सि**>**भव्+इ+तास्+सि **>**भवि+तास्+सि**>**भवितास्+सि। अब 'सि' परे होने पर 'तासस्त्योर्लोपः' से तास् के सकार का लोप होकर– 'भवितासि' रूप सिद्ध हुआ।

5. **भवितास्थः** – पूर्ववत् 'भू' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में 'अनद्यतने लुट्' सूत्र से अनद्यतन भविष्यत् काल में लुट् लकार हुआ– भू+लुट्। अनुबन्ध लोप होकर भू+ल् बना। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद में, मध्यम पुरुष द्विवचन में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से 'थस्' प्रत्यय हुआ–

भू+थस्। पुनः कर्तथक सार्वधातुक थस् परे होने पर धातु से प्राप्त शप् का बाध करके 'स्यतासी लृलुटोः' सूत्र से 'तासि' हुआ और अनुबन्ध लोप होकर भू+तास्+थस् बना। अब वलादि आर्धधातुक 'तास्' के परे होने पर तास् को इट् आगम हुआ और अनुबन्ध लोप होकर– भू+इ+तास्+थस्। इगन्त अंग को गुण, अव् आदेश होकर– भव्+इ+तास्+थस्। भवितास्+थस्। यहाँ सकारादि और रेफादि प्रत्ययों के परे न होने के कारण तास् के सकार का लोप नहीं हुआ। 'निमित्तोपाये नैमित्तिकस्यापि अयामः' नियम से जब लोप का निमित्त्स सकार और रेफ के न होने पर तास् के सकार का लोप भी नहीं हुआ। अब 'भवितास्+थस्' की दशा में थस् के सकार को रुत्व और विसर्ग होकर– 'भवितास्थः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

6. **भवितास्थ** – पूर्ववत् 'भू' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में, अनद्यतन भविष्यत् अर्थ गम्यमान होने के कारण 'अलद्यतने लुट्' से लुट् लकार का विधान हुआ– भू+लुट्। अनुबन्ध लोप होने पर– भू+ल्। अब पूर्ववत् लकार के स्थान पर परस्मैपद में, प्रथम पुरुष बहुवचन में 'बहुषु बहुवचनम्' से 'थ' प्रत्यय हुआ– भू+थ। अब 'थ' के कर्तथक होने के कारण एवं 'तिङ्शित्सार्वधतुकम्' सूत्र से सार्वधातुक होने के कारण कर्ता अर्थ में सार्वधातुक संज्ञक 'थ' के परे होने से 'कर्तरि शप्' सूत्र द्वारा प्राप्त शप् का बाध कर 'स्यतासी लुलृटोः' से तासि आदेश हुआ– भू+तासि+थ। अब 'भू' धातु से वलादि आर्धधातुक तास् (अनुबन्ध लोप) के परे होने से 'आर्धधातुकस्येड वलादेः' से तास् को 'इट्' का आगम– भू+इट्+तास्+थ। इट् के टकार की इत्संज्ञा और लोप– भू+इ+तास्+थ। इगन्त अंग 'भू' को गुण, अवादेश– भव्+इ+तास्+थ **>** भवितास्+थ। अब चूंकि सकार और रेफादि प्रत्यय परे नहीं है,

अतः तास् के सकार का लोप नहीं हुआ और वर्ण सम्मेलन होकर – 'भवितास्थ' रूप सिद्ध हुआ।

7. **भवितास्मि** – पूर्ववत् अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भवे चकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में, अनद्यतन भविष्यत् काल में 'अनद्यतने लुट्' से लुट् लकार हुआ– भू+लुट्। अनुबन्ध लोप होकर– 'भू+ल्' की स्थिति में लकार के स्थान पर परस्मैपद में, प्रथम पुरुष और मध्यम पुरुष का विषय न होने के कारण 'अस्मद्युत्तमे' सूत्र से उत्तम पुरुष में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से एकवचन में 'मिप्' प्रत्यय का विधान हुआ– भू+मिप्। पकार की इत्संज्ञा और लोप होकर– भू+मि बना। अब कर्ता अर्थ में विद्यमान सार्वधातुक 'मि' के परे होने के कारण प्राप्त 'शप्' का 'स्यतासी लुलृटोः' सूत्र से बाध होकर शप् के स्थान पर तासि आदेश हुआ– भू+तासि+मि। इकार अनुबन्ध का लोप होकर– भू+तास्+मि। पुनः वलादि आर्धधातुक 'तास्' को इट् का आगम और टकार अनुबन्ध का लोप होकर– 'भू+इ+तास्+मि' बना। अब इगन्त अंग 'भू' को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण, अवादेश और वर्णसम्मेलन होकर– भवि+तास् मि। भवितास्+मि। चूँकि 'तास्' से परे सकारादि और रकारादि प्रत्यय का अभाव है; अतः तास् के सकार का लोप नहीं हुआ और वर्णसम्मेलन होकर – 'भवितास्मि' रूप सिद्ध हुआ।

8. **भवितास्वः** – पूर्ववत् 'भू' सत्तायाम् धातु से, 'लः कर्मणि च भावे चकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में, अनद्यतन भविष्यत् काल के अर्थ में 'अनद्यतने लुट्' से लुट् का विधान हुआ– भू+लुट्। अनुबन्ध लोप होकर– भू+ल् बना। अब लकार के स्थान पर आत्मनेपद के निमित्त से रहित होने पर 'भू' धातु से परस्मैपद में, पूर्ववत् उत्तम पुरुष

द्विवचन में 'वस्' प्रत्यय का विधान किया गया– भू+वस्। पुनः कर्तर्थक सार्वधातुक वस् के सकार की भी इत्संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु वस् के विभक्तिस्थ होने के कारण 'न विभक्तौ तुस्माः' सूत्र से सकार की इत्संज्ञा नहीं होती है। अब भू धातु से कर्तर्थक सार्वधातुक तस् के परे होने के कारण 'कर्तरि शप्' से प्राप्त शप् प्रत्यय का बाध करके 'स्यतासी लुलृटोः' से 'तासि' प्रत्यय हुआ– भू+तासि+वस्। अनुनासिक इकार की इत्संज्ञा और लोप होकर– भू+तासि+वस्। पुनः वलादि आर्धधातुक तास् को पूर्ववत् इट् का आगम और टकार अनुबन्ध का लोप– भू+इ+तास्+वस् की स्थिति में इगन्त अंग 'भू' को गुण– भो+इ+तास्+वस्। अब 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अव् आदेश – भव्+इ+तास्+वस्। भवि+तास्+वस्। भवितास्+वस्। चूंकि तास् से परे न तो सकारादि प्रत्यय है और न ही रेफादि; अतः तास् के सकार का 'तासस्त्योर्लोपः' सूत्र से लोप नहीं हुआ और वस् के सकार को 'ससजुषो रुः' से रु होकर एवं विसर्ग आदि होकर– 'भवितास्वः' रूप बना।

9. <u>भवितास्मः –</u> अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में अनद्यतन भविष्यत् काल गम्यमान होने पर 'अनद्यतने लुट्' से लुट् लकार का विधान होकर– भू+लुट् हुआ। अब टकार अनुबन्ध का लोप होकर– भू+ल् बना। लकार के स्थान पर परस्मैपद में, प्रथम पुरुष एवं मध्यम पुरुष का विषय न होने के कारण 'अस्मद्युत्तमे' से उत्तम पुरुष के बहुवचन में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र द्वारा बहुवचन संज्ञक 'मस्' प्रत्यय का विधान हुआ– भू+मस्। अब चूंकि मस् 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' सूत्र से सार्वधातुक संज्ञा हुई है, अतः 'कर्तरि शप्' से शप् प्रत्यय की प्राप्ति हो रही थी किन्तु यहाँ लुट् लकार का विषय होने के कारण 'स्यतासी लृलुटोः' सूत्र से शप् के स्थान पर तासि प्रत्यय हुआ– भू+तासि+मस्। मस् के सकार

की इत्संज्ञा का पूर्ववत् निषेध। तासि के इकार की इत्संज्ञा और लोप– भू+तास्+मस्। पुनः आर्धधातुक प्रत्यय तास् के वलादि होने के कारण 'आर्धधातुकस्येड वलादेः' से इट् का आगम, टित् होने से पूर्व स्थिति– भू+इट्+तास्+मस्। टकार की इत्संज्ञा और लोप– भू+इ+तास्+मस्। इगन्त अंग 'भू' को गुण– भो+इ+तास्+मस्। ओकार को अव् आदेश– भव्+इ+तास्+मस् **>** भवि+तास्+मस् **>** भवितास्+ स्। चूंकि तास् से परे रेफ और सकार विद्यमान नहीं है; अतः तास् के सकार का लोप नहीं हुआ। अब मस् के सकार को पूर्ववत् रुत्व एवं विसर्ग होकर 'भवितास्मः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

12.4 भू धातु के लृट् लकार की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्र

<u>सूत्र –</u> लृट् शेषे च ।। 3/3/13।।

<u>वृत्ति –</u> भविष्यदर्थाद्धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्यां वा। स्यः। इट्। भविष्यति। भविष्यतः। भविष्यन्ति। भविष्यसि। भविष्यथः। भविष्यथ। भविष्यामि। भविष्यावः। भविष्यामः।

<u>अर्थ –</u> क्रियार्था क्रिया चाहे विद्यमान हो या न हो, भविष्यत्काल की क्रिया में धातु से लृट् लकार हो।

<u>व्याख्या –</u> 'लृट्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'शेषे' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'च' इति अव्ययपदम्। 'भविष्यति गम्यादयः' से 'भविष्यति' की अनुवृत्ति आती है। 'धातोः' पूर्ववत् अधिकृत है। यहाँ क्रियार्था क्रिया का उल्लेख आया है, जिसे समझ लेना आवश्यक है। अष्टाध्यायी में इस सूत्र से कुछ पहले 'तुमुन् ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्' सूत्र आया है। उसमें 'क्रियार्थाया क्रियायाम्' की शर्त है। उससे भिन्न 'शेष' अभिप्रेत है। अतः अर्थ हुआ कि – क्रियार्था क्रिया

चाहे विद्यमान हो या न हो, सामान्य भविष्यत् काल गम्यमान होने पर धातु से 'लृट्' लकार होता है।

नोट– जो क्रिया किसी दूसरी क्रिया के लिए की जाती है, उसे ही क्रियार्था क्रिया कहते हैं। 'क्रिया अर्थः प्रयोजनं यस्याः सा क्रियार्था क्रिया।' यथा– करिष्यामीति व्रजति (मैं करूँगा इसलिए वह जाता है)। यहाँ करने के लिए व्रजन क्रिया की जा रही है। अतः व्रजन क्रिया क्रियार्था क्रिया है।

12.5 भू धातु के लृट् लकार के रूपों की सिद्धि प्रक्रिया

1. **भविष्यति** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्ता अर्थ में सामान्य भविष्यत् काल अर्थ गम्यमान होने पर 'लृट् शेषे च' सूत्र द्वारा लृट् लकार का विधान हुआ– भू+लृट्। अकार और टकार अनुबन्ध का लोप होकर– भू+ल्। अब लकार के स्थान पर आत्मनेपद के निमित्त से हीन 'भू' धातु से 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद में पूर्ववत् उत्तम पुरुष एवं मध्यम पुरुष का प्रसंग न होने के कारण 'शेषे प्रथमः' से प्रथम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से एकवचन में तिप् प्रत्यय का विधान हुआ– भू+तिप्। अब पकार की इत्संज्ञा और लोप– भू+ति। अब 'ति' की पूर्ववत् 'तिङ्शित्सार्वधतुकम्' सूत्र से सार्वधातुक संज्ञा और 'कर्तरि शप्' से शप् की प्राप्ति किन्तु 'स्यतासी लुलृटोः' सूत्र से शप् का बाध करके उसके स्थान पर 'स्य' प्रत्यय हुआ– भू+स्य+ति। अब तिङ् और शित् से भिन्न और धातु से विहित होने के कारण 'आर्धधातुकं शेषः' से 'स्य' की आर्धधातुक संज्ञा और वलादि आर्धधातुक 'स्य' को 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से 'इट्' आगम और टित् होने से वह 'इट्' 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र से 'स्य' का आदि अवयव बना–

भू+इट्+स्य+ति। टकार की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होकर– भू+इ+स्य+ति बना। पुनः पूर्ववत् इगन्त अंग 'भू' को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से गुण एवं ओकार को 'एचोऽयवायावः' सूत्र से अव् आदेश होकर– भव्+इ+स्य+ति। इस 'इ' से परे 'स्य' के सकार को 'आदेशप्रत्यययोः' सूत्र से मूर्धन्य 'ष्' आदेश– भव्+इ+ष्य+ति। अब वर्ण सम्मेलन करके 'भविष्यति' रूप सिद्ध हुआ।

2. **भविष्यतः** – अकर्मक 'भू' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चकर्मकेभ्यः'' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में सामान्य भविष्यत् अर्थ में 'लृट् शेषे च' सूत्र से लृट् लकार का विधान हुआ– भू+लृट्। अनुबन्ध लोप होकर– भू+ल्। अब लकार के स्थान पर परस्मैपद में उत्तम पुरुष एवं मध्यम पुरुष का विषय न होने के कारण 'शेषे प्रथमः' से प्रथम पुरुष में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' से द्विवचन में तस् प्रत्यय हुआ– भू+तस्। तस् के सकार की विभक्तिस्थ होने के कारण 'न विभक्तौ तुस्माः' से इत्संज्ञा का निषेध होकर एवं सार्वधातुक होने के कारण प्राप्त शप् का 'स्यतासी लृलुटोः' से बाध होकर 'स्य' प्रत्यय हुआ– भू+स्य+तस्। अब वलादि आर्धधातुक स्य को 'आर्धधातुकस्येड वलादेः' सूत्र से इट् आगम, अनुबन्ध लोप– भू+इ+स्य+तस्। इकार से परे 'स्य' के सकार को 'आदेश प्रत्यययोः' सूत्र से मूर्धन्य आदेश होकर– भू+इ+ष्य+तस् हुआ। पुनः इगन्त अंग भू को गुण, ओकार के तस् को सकार पूर्ववत् रुत्व विसर्ग आदेश होकर– 'भविष्यतः' रूप सिद्ध हुआ।

3. **भविष्यन्ति** – पूर्ववत् 'भू' धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में सामान्य भविष्यत् अर्थ गम्यमान होने के कारण 'लृट् शेषे च' सूत्र से लृट् लकार का विधान हुआ– भू+लृट्। अब अनुबन्ध लोप के पश्चात्– भू+ल्। पुनः लकार के स्थान पर आत्मनेपद का निमित्त

उपस्थित न होने के कारण परस्मैपद में, मध्यम पुरुष एवं उत्तम पुरुष का विषय न होने के कारण 'शेषे प्रथमः' से प्रथम पुरुष में, 'बहुषु बहुवचनम्' से बहुवचन की विवक्षा में 'झि' प्रत्यय का विधान किया गया– भू+झि। अब चूंकि 'झि' कर्तर्थक है; अतः 'कर्तरि शप्' से प्राप्त 'शप्' का 'स्यतासी लृलुटोः' से बाध होकर 'शप्' के स्थान पर 'स्य' आदेश हुआ– भू+स्य+झि। बलादि आर्धधातुक स्य को इट् का आगम और टकार अनुबन्ध का लोप होकर– भू+इ+स्य+झि। अब इकार परे रहते 'स्य' के सकार को मूर्धन्य आदेश– भो+इ+ष्य झि। इगन्त अंग भू को गुण, ओकार को अव् आदेश– भो+इ+ष्य+झि, भविष्य+झि। अब 'झोऽन्तः' से 'झि' के अकार को 'अन्त्' आदेश– भविष्य+अन्त् **>** भविष्य+अन्ति। पुनः 'अतो गुणे' से पररूप एकादेश होकर– 'भविष्यन्ति' रूप बना।

4. **भविष्यसि** – 'भू' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में सामान्य भविष्यत् अर्थ गम्यमान होने के कारण 'लृट् शेषे च' सूत्र से लृट् का विधान हुआ– भू+लृट्। लकार (अनुबन्ध लोप होने के पश्चात्) के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद में, प्रथम पुरुष एवं उत्तम पुरुष का विषय न होने के कारण 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से मध्यम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से एकवचन की विवक्षा में सिप् प्रत्यय हुआ– भू+सिप्। पकार अनुबन्ध का लोप– भू+सि। पूर्ववत् शप् का बाध करके 'स्यतासी लृलुटोः' सूत्र से स्य प्रत्यय– भू+सि। अब वलादि आर्धधातुक 'स्य' को इट् का आगम होकर इत्संज्ञा और लोप होकर– भू+इ+स्य+सि। अब चूंकि 'इ' स्य को आगम हुआ है, तो 'यदागमास्तद्गुणीभूताः तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते' परिभाषा से इट् आगम, स्य के साथ मित्रवत् भाव (मित्रवदागमः) को प्राप्त होकर वह

भी (इट् भी) आर्धधातुक हो गया। अब आर्धधातुक 'इ' के परे रहते इगन्त अंग. 'भू' के उकार को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण आदेश, 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अव् आदेश– भू+इ+स्य+सि > भव्+इ+स्य सि, भविष्य +सि। इकार के परे स्य को (स्य के सकार को) मूर्धन्य आदेश – भविष्य+सि। वर्णसम्मेलन होकर– भविष्यसि रूप की सिद्धि हुई।

5. **भविष्यथः** – पूर्ववत् 'भू' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में सामान्य भविष्यत् काल के विद्यमान होने पर 'लृट् शेषे च' सूत्र से लृट् लकार का विधान किया गया– भू + लृट्। लृट् में ऋकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से तथा टकार की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत्संज्ञा होकर 'भू+ल्' की स्थिति में लकार के स्थान पर प्राप्त 18 तिङ् प्रत्ययों में प्रथम नौ की 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' से परस्मैपद संज्ञा और पुनः प्रथम पुरुष एवं उत्तम पुरुष के विषय से भिन्न मध्यम पुरुष में 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' से मध्यम पुरुष विषयक द्विवचन संज्ञक प्रत्यय थस् हुआ– भू+थस्। अब थस् के कर्ता अर्थ में होने के कारण धातु से परे प्राप्त शप् का बाध करके 'स्यतासी लुलृटोः' सूत्र से स्य प्रत्यय हुआ– भू+स्य+थस्। पुनः वलादि आर्धधातुक 'स्य' को 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से इट् का आगम हुआ; इट् के टकार की इत्संज्ञा और लोप– भू+इ+स्य+थस्। ध्यान रहे कि थस् के सकार की विभक्तिस्थ होने के कारण इत्संज्ञा नहीं हुई है। अब पूर्ववत् इगन्त अंग 'भू' के 'ऊ' को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण– भो+इ+स्य+थस्। 'इ' से परे 'स्य' के सकार को 'आदेश प्रत्ययोः' से मूर्धन्य होकर– भो+इ+ष्य+थस्। अब ओकार को अव् आदेश– भविष्य+थस्। पुनः थस् के सकार को रुत्व विसर्ग होकर– भविष्यथः रूप बना।

6. **भविष्यथ** – पूर्ववत् अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र से सामान्य भविष्यत् अर्थ गम्यमान होने की स्थिति में 'लृट् शेषे च' सूत्र से लृट् लकार का विधान हुआ– भू+लृट्। अब अनुबन्ध लोप करके 'भू+ल्' यह स्थिति बनी। लकार के स्थान पर आत्मनेपद के निमित्तों से हीन धातु से, 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद में, मध्यम पुरुष बहुवचन में 'थ' प्रत्यय का विधान किया गया– भू+थ। अब चूंकि 'थ' कर्ता अर्थ में है और सार्वधातुक भी है। अतः 'कर्तरि शप्' से शप् प्राप्त था किन्तु उसका बाध करके 'स्यतासी लुलृटोः' सूत्र से 'स्य' प्रत्यय हुआ– भू+स्य+थ। पुनः 'स्य' धातु से विहित है और तिङ्, शित् से भिन्न भी है, तो उसकी 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक संज्ञा हुई। चूंकि 'स्य' वलादि आर्धधातुक है; अतः 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से उसे इट् का आगम हुआ– भू+इट्+स्य+थ। इट् के टकार की इत्संज्ञा और लोप – भू+इ+स्य+य। इकार से परे 'स्य' के सकार को 'आदेश प्रत्यययोः' सूत्र से मूर्धन्य आदेश होकर– 'भू+इ+ष्य+थ' बना। अब आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते इगन्त अंग 'भू' को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण होकर– 'भो+इ+ष्य+थ' बना। ओकार को 'एचोऽयवायावः' से अव् आदेश होकर– भव्+इ+ष्य+थ और वर्णसम्मेलन करके 'भविष्यथ' रूप की सिद्धि हुई।

7. **भविष्यामि** – भविष्यामि की रूपसिद्धि भी पूर्ववत् होती है। 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्ता अर्थ में, सामान्य भविष्यत् काल गम्यमान होने पर 'लृट् शेषे च' सूत्र से 'लृट्' प्रत्यय का विधान हुआ– भू+लृट्। लृट् के लकार एवं टकार की क्रमशः 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' और 'हलन्त्यम्' सूत्रों से इत्संज्ञा होकर तस्य लोपः से लोप हुआ– भू+ल्। लकार की इत्संज्ञा 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से प्राप्त होती है किन्तु उच्चारण सामर्थ्य से लकार की इत्संज्ञा नहीं होती। अब लकार के

स्थान पर 18 तिङ् प्रत्ययों की प्राप्ति होती है, जिसमें प्रथम नौ की परस्मैपद संज्ञा की गयी। पुनः प्रथम पुरुष एवं मध्यम पुरुष के विषयों से ही उत्तम पुरुष में 'अस्मद्युत्तमः' से उत्तम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' से एकवचन की विवक्षा में 'मिप्' प्रत्यय का विधान हुआ– भू+मिप्। मिप् के पकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप– भू+मि। चूँकि 'मि' की 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' सूत्र से सार्वधातुक संज्ञा है और वह ('मि') कर्ता अर्थ में है; अतः– 'कर्तरि शप्' से शप् की प्राप्ति होती है किन्तु चूंकि यह लृट् लकार का स्थल है, अतः 'स्यतासी लृलुटोः' सूत्र से शप् का बाध करके 'स्य' प्रत्यय का विधान हुआ– भू+स्य+मि। अब चूंकि 'स्य' धातु से विहित एवं तिङ् शित् से भिन्न है, तो 'आर्धधातुकं शेषः' सूत्र से इसकी आर्धधातुक संज्ञा हुई। अब चूंकि 'स्य' वलादि आर्धधातुक है; इसलिए 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से 'स्य' को इट् का आगम, 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र से पूर्व अवयवत्व, 'हलन्त्यम्' सूत्र से इट् के टकार की इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप– भू+इ+स्य+मि। पूर्ववत् इकार से परे स्य के सकार को 'आदेश प्रत्यययोः' से मूर्धन्य भाव– भू+इ+ष्य+मि। आर्धधातुक परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से इगन्त अंग 'भू' को गुण हुआ। ध्यातव्य है कि गुण 'अलोऽन्त्यस्य' परिभाषा से अन्तिम अल् 'ऊ' को होता है। यही सिद्धान्त सर्वत्र ध्यान रखना है। अब– भो+इ+ष्य+मि। पुनः 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ओकार को 'अव्' आदेश– भव्+इ+ष्य+मि। भविष्य+मि। चूंकि 'भविष्य' अदन्त (ह्रस्य अकारान्त) है और उसके परे यञ् प्रत्याहार का वर्ण 'मि' का मकार ह। अतः 'अतो दीर्घो यञि' सूत्र से अदन्त अंग– 'भविष्य' के अन्तिम मकारोत्तरवर्ती अकार को (अलोऽन्त्य परिभाषा से) दीर्घ होकर 'भविष्यामि' रूप सिद्ध हुआ।

8. **भविष्यावः** – पूर्ववत् 'भू' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में सामान्य भविष्यत् काल गम्यमान होने की स्थिति में 'लृट् शेषे च' सूत्र से लृट् लकार का विधान हुआ– भू+लृट्। अब पूर्ववत् लृट् के ऋकार एवं टकार की इत्संज्ञा और लोप होकर– भू+ल् बना। अब पुनः लकार के स्थान पर आत्मनेपद के निमित्तों से रहित धातु से 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' द्वारा परस्मैपद में, पूर्ववत् उत्तम पुरुष द्विवचन में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से 'द्विवचन' संज्ञक वस् प्रत्यय का विधान हुआ– भू+वस्। वस् के सकार की इत्संज्ञा नहीं हुई क्योंकि वह विभक्ति में स्थित है। कर्तथक सार्वधातुक वस् के परे रहते 'कर्तरि शप्' से प्राप्त शप् प्रत्यय का बाध करके 'स्यतासी लृलुटोः' सूत्र से 'स्य' प्रत्यय हुआ– भू+स्य+वस्। चूंकि पूर्ववत् 'स्य' की आर्धधातुक संज्ञा सुविदित एवं शास्त्रसिद्ध है। अतः 'स्य' को वलादि होने के कारण 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से 'इट्' का आगम हुआ और वह 'इट्' टित् होने के कारण 'स्य' का आदि अवयव बना– भू+इट्+स्य+वस्। अब इट् के टकार की इत्संज्ञा और लोप कार्य होकर– भू+इ+स्य+वस्। आर्धधातुक संज्ञक प्रत्यय के परे रहते इगन्त अंग 'भू' को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण होकर– भो+इ+स्य+वस्। 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ओकार को अव् आदेश– भ्+अव्+इ+स्य+वस्। पुनः भव्+इ+स्य+वस् बना। इकार के परे होने से पूर्ववत् 'स्य' के सकार को 'आदेश प्रत्यययोः' सूत्र से मूर्धन्य आदेश होकर– भव्+इ+ष्य+वस्। भविष्य+वस्। पुनः पूर्व की भाँति अदन्त अंग 'भविष्य' के बाद यञादि 'वस्' विद्यमान है। अतः 'अतोदीर्घो यञि' सूत्र से यकारोत्तवर्ती ह्रस्व अकार को दीर्घ आदेश होकर– भविष्यावस् रूप बना। पुनः पूर्ववत् वस् के सकार को रुत्व विसर्ग आदेश होकर 'भविष्यावः' पद सिद्ध हुआ।

9. **भविष्यामः** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः' सूत्र के द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में सामान्य भविष्यत् काल गम्यमान होने पर 'लृट् शेषे च' सूत्र से लृट् लकार का विधान किया गया– भू+लृट्। अब ऋकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से एवं टकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप– भू+ल्। लकार के स्थान पर पूर्ववत् ही परस्मैपद में, प्रथम पुरुष एवं मध्यम पुरुष का विषय न होने के कारण 'अस्मद्युत्तमः' से उत्तम पुरुष में, बहुवचन का विषय होने से 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र द्वारा 'मस्' प्रत्यय का विधान हुआ– भू+मस्। चूंकि मस् का सकार विभक्तिस्थ है; अतः उसकी इत्संज्ञा का निषेध हो गया। अब 'मस्' के कर्तर्थक सार्वधातुक होने से प्राप्त 'शप्' का 'स्यतासी लृलुटोः' सूत्र से बाध होकर 'शप्' के स्थान पर 'स्य' आदेश हुआ– भू+स्य+मस्। 'स्य' धातु से विहित है और तिङ् शित्-भिन्न है; अतः उसकी 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक संज्ञा हुई। अब चूंकि 'स्य' वलादि आर्धधातुक है, अतः 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' सूत्र से इट् का आगम हुआ– भू+इट्+स्य+मस्। इट् के टकार की इत्संज्ञा और लोप– भू+इ+स्य+मस्। इकार के परे रहते 'स्य' के सकार को पूर्व की भाँति मूर्धन्य आदेश– भू+इ+ष्य+मस्। अब आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते इगन्त अंग 'भू' को गुण– भो+इ+ष्य+मस्। पुनः 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ओकार को अव् आदेश– भव्+इ+ष्य+मस्। अब पुनः भविष्य+मस्। पूर्ववत् अदन्त अंग से परे यञादि सार्वधातुक परे रहते 'अतो दीर्घो यञि' से भविष्य के अन्त्य अकार को दीर्घ आदेश होकर एवं 'मस्' के सकार को पूर्ववत् रुत्व विसर्ग होकर– 'भविष्यामः' पद सिद्ध हुआ।

12.6 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप समझ चुके हैं कि 'भू' धातु के 'लुट्' लकार और 'लृट्' लकार की रूपसिद्धि प्रक्रिया का विधान क्या है? सम्पूर्ण इकाई में उपयुक्त दोनों लकारों के अन्तर्गत आने वाले सूत्रों की विधिवत् व्याख्या की गयी है और उसके पश्चात् दोनों (लुट् और लृट्) लकारों के तीनों पुरुषों एवं तीनों वचनों की रूपसिद्धि प्रक्रिया विस्तारपूर्वक दी गयी है। आप यहाँ समझ चुके होंगे कि कैसे सार्वधातुक प्रत्ययों के परे होने पर भी 'शप्' का बाध करके 'स्य' (लुट् लकार में) एवं 'तासि' (लृट् लकार में) का विधान किया गया है। इन्हीं उपर्युक्त रूपसिद्धियों के माध्यम से आप भ्वादिगण की अन्य धातुओं के लुट् एवं लृट् लकार की रूपसिद्धि जान सकेंगे। यह पूर्व में ही बताया जा चुका है कि तिङन्त प्रक्रिया वाक्य-विन्यास प्रक्रम का प्राण है। बिना तिङन्त ज्ञान के हमारा शाब्दिक व्यवहार प्रलाप-मात्र रह जायेगा। साथ ही आप इस इकाई के द्वारा यह भी जान सकेंगे कि कैसे 'स्य' के लकार को मूर्धन्य आदेश हुआ और 'स्य' की आर्धधातुक संज्ञा हुई। अन्नतः यह इकाई बहुत ही उपयोगी एवं बोधगम्य है।

12.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

21. वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी, गोरखपुर, गीताप्रेस।
22. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या गोविन्दाचार्य, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती।
23. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, धरानन्द, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास।
24. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, भीमसेन, लघुसिद्धान्तकौमुदी, (भाग–1–6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन।
25. शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय, (भाग–1–3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।
26. वरदराजाचार्य, सम्पा. एवं हिन्दी सिंह, सत्यपाल, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, शिवालिक पब्लिकेशन।

12.8 अभ्यास प्रश्न

1) 'भविता' की सिद्धि प्रक्रिया समझाइये।

2) 'आर्धधातुक संज्ञा' विधायक सूत्र की व्याख्या कीजिए।

3) 'शप्' का बाध होकर 'स्य' ओर 'तासि' प्रत्यय क्यों होते? बताइए।

4) 'भवितारः' की सिद्धि प्रक्रिया सूत्रोत्लेख पूर्वक बताइये।

5) 'भविष्यथ' की सिद्धि प्रक्रिया का विस्तार से उल्लेख कीजिए।

इकाई 13 भू धातु (परस्मैपद) आशीर्लिङ् और लोट् लकार

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- 'भू' धातु के आशीर्लिङ् लकार एवं लोट् लकार की सिद्धि में प्रयुक्त सूत्रों की व्याख्या जान सकेंगे।
- आशीर्लिङ् लकार के रूप को स्पष्टतया जान सकेंगे।
- भवतु आदि की सिद्धि प्रक्रिया का विधिवत् ज्ञान कर सकेंगे।
- भूयात्, भूयास्ताम् आदि की सिद्धि को सरलतया जान सकेंगे।
- यासुट् आदि के आगम की विधि का ज्ञान कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

यहाँ पर पूर्व की इकाइयों की तरह ही अकारादि क्रम से सिद्धि प्रक्रिया का आलम्बन किया गया है। लृट् के पश्चात् लेट् लकार का क्रम आता है किन्तु लेट् लकार का प्रयोग वेद में होता है (एषु पंचमो लकारः छन्दोमात्रगोचरः)। आशीर्लिङ् और लोट् दोनों ही आशीर्वाद अर्थ में हैं। अतः इस इकाई में आशीर्लिङ् और लोट् लकार को एक साथ रखा गया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना उचित है कि लिङ् लकार को दो भागों में बाँटा गया है– आशीर्लिङ् और विधिलिङ्। दोनों की रूपसिद्धि प्रक्रिया में पर्याप्त भेद है। प्रस्तुत इकाई में आप आशीर्लिङ् एवं लोट् लकार का अध्ययन करेंगे।

13.2 भू धातु के आशीर्लिङ् लकार की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्र

सूत्र – आशिषि लिङ्लोटौ ।। 3/3/173।।

वृत्ति – आशिषि धातोर्लिङ्लोटौ भवतः।

अर्थ – आशीर्वाद अर्थ में धातु से लिङ् और लोट् लकार होता है।

व्याख्या – आशिषि सप्तमी विभक्ति एकवचन, लिङ्लोटौ प्रथमा विभक्ति द्विवचन। यहाँ धातोः, प्रत्ययः परश्च सूत्र का पूर्ववत् अधिकार है। अब अर्थ हुआ– (आशिषि) आशीर्वाद अर्थ में धातु से (लिङ्लोटौ) लिङ् और लोट् प्रत्यय होते हैं। वक्ता का किसी दूसरे के लिए अप्राप्त वस्तु की कामना करना 'आशीर्वाद' कहलाता है। जैसे किसी को कहें– "चिरं जीव, पुत्रस्ते भवतात्" आदि।

सूत्र – लिङाशिषि ।। 3/4/116।।

वृत्ति – आशिषि लिङस्तिङ आर्धधातुकसंज्ञः स्यात्।

अर्थ – आशीर्वाद अर्थ में लिङ् के स्थान में होने वाला तिङ् आर्धधातुक संज्ञक हो।

व्याख्या – लिङ् षष्ठी विभक्ति एकवचन (लुप्तष्ठठीकं पदम्), आशिषि सप्तमी विभक्ति एकवचल, तिङ् प्रथमा विभक्ति एकवचन (तिङ्शित्सार्वधातुकम् सूत्र से), आर्धधातुकम् प्रथमा विभक्ति एकवचन (आर्धधातुकं शेषः सूत्र से)। यहाँ भी 'लिट् च' सूत्र की तरह 'लङः शाकटायनस्यैव' (3.4.111) सूत्र से 'एव' पद का अनुवर्तन कर 'आर्धधातुकसंज्ञा ही हो, अर्थात् सार्वधातुक संज्ञा न हो' इस प्रकार समझना चाहिए। यहाँ एक संज्ञाधिकार न होने पर भी एक ही संज्ञा होगी दो नहीं। इसका फल 'शप्' का बाध करके 'यासुट्' का आगम करना है।

सूत्र – यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च ।।3/4/103।।

वृत्ति – लिङः परस्मैपदानां यासुडागमो ङिच्च।

अर्थ – लिङ्स्थानीय परस्मैपदों को यासुट् का आगम हो तथा वह आगम उदात्त और ङित् हो।

व्याख्या – यासुट् प्रथमा विभक्ति एकवचन, परस्मैपदेषु सप्तमी विभक्ति बहुवचन, उदात्तः प्रथमा विभक्ति एकवचन, ङित् प्रथमा विभक्ति एकवचन, च इति अव्ययपदम्। लिङः षष्ठी विभक्ति एकवचन (लिङः सीयुट् से)। अब पूर्ण अर्थ हुआ– ''लिङ् के परस्मैपदों का अवयव 'यासुट्' हो जाता है और वह उदात्त तथा ङित् होता है।'' यहाँ ध्यान देने की बात है कि 'परस्मैपदेषु' का विभक्ति विपरिणाम होकर 'परस्मैपदानाम्' बन जाता है।

अष्टाध्यायी में उक्त सूत्र ('यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च') से पूर्व 'लिङः सीयुट्' यह सामान्य विधिसूत्र पढ़ा गया है, जिसमें लिङ् स्थानीय प्रत्ययों को 'सीयुट्' आगम का विधान है। पुनः प्रकृत सूत्र द्वारा लिङ् स्थानीय परस्मैपदों को 'यासुट्' आगम किया गया तो परिशेष्यात् (परिशेष विधि से) यह स्पष्ट हो गया कि आत्मनेपद में 'सीयुट्' तथा परस्मैपद में 'यासुट्' का आगम होता है। 'यासुट्' के आगम को यहाँ 'उदात्त' कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि

आगम 'अनुदात्त' होते हैं– "आगमा अनुदात्ता भवन्तीति"– (पदमंजरी)। 'यासुट्' के आगम को 'ङित्' कहा गया है। अतः ङित्व भी उसे ही होगा, जिसे यासुट् का आगम विधान किया गया होगा। इसी से गुण-वृद्धि का निषेध हो सकेगा। यथा– 'स्तुयात्' में गुण नहीं होता। यहाँ एक शंका उत्पन्न होती है कि 'यासुट्' तिबादियों का अवयव है। अतः यासुट् विशिष्ट तिबादियों का भी ङित्व निर्बाध सिद्ध है, पुनः यासुट् को ङित् करने का क्या प्रयोजन है? इसका समाधान यह है कि लकार के सहारे तिबादि आदेशों मे ङित्व नहीं आता है। अभिप्राय यह है कि लकार चाहे ङित् हो तो भी, उनके स्थान पर होने वाले तिबादि ङित् नहीं होते। अतः 'अचिनवम्' और 'अकरवम्' आदि में लङ् के कारण 'अम्' के ङित् न होने से निर्बाध गुण हो जाता है।

सूत्र – किदाशिषि ।। 3/4/104 ।।

वृत्ति – आशिषि लिङो यासुट् कित्। स्कोः संयोगाद्योरिति सलोपः।

अर्थ – आशीर्वाद अर्थ में लिङ् का आगम यासुट् कित् हो। यहाँ पर 'स्कोः संयोगाद्यन्तो च' सूत्र से सकार को लोप हो जायेगा।

व्याख्या – कित् प्रथमान्त, आशिषि सप्तम्यन्त, लिङ् षष्ठ्यन्त और यासुट् प्रथमान्त। यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यासुट् के आगम को कित् कहा गया है। कित् करने से सम्प्रसारण आदि कार्य सिद्ध हो जाते हैं। यथा– यज् धातु के आशीर्लिङ् में 'यज्+यात्' की स्थिति में 'वचिस्व.' सूत्र से कित् होने पर सम्प्रसारण हो जाता है– 'इज्यात्'। इसी प्रकार 'वह्' का उह्यात्, 'वप्' का उप्यात् आदि रूप यासुट् को कित् मानकर ही होते हैं। 'जागर्यात्' में 'जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु' (7.3.85) द्वारा गुण भी यासुट् को कित् मानकार ही किया जा सकता है, अन्यथा ङित् में तो इसकी प्रकृति निषिद्ध है।

<u>सूत्र –</u> **क्ङिति च ।।1/1/5।।**

<u>**वृत्ति –**</u> गित्किड्ङिन्निमित्ते इग्लक्षणे गुणवृद्धी न स्तः। भूयात्। भूयास्ताम्। भूयासुः। भूयाः। भूयास्तम्। भूयास्त। भूयासम्। भूयास्व। भूयास्म।

<u>**अर्थ –**</u> गित्, कित्, ङित् को मानकर इग्लक्षण गुण वृद्धि नहीं होते।

<u>**व्याख्या –**</u> 'क्ङिति' सप्तम्यन्त, च इति अव्ययपदम्, इकः षष्ठ्यन्तं पदमनुवर्तते, गुणवृद्धी प्रथमान्तम्। ग् च क च ङ् च क्ङः क्ङः इतो यस्य असौ क्ङित्, तस्मिन् क्ङिति। यहाँ निमित्त सप्तमी है। 'यस्य च भावेन भावलक्षणम् (2.3.3.7) द्वारा विहित भावसप्तमी का ही दूसरा नाम निमित्त सप्तमी है।

अब अर्थ हुआ – गित्, कित्, ङित् को मानकर 'इक': इस प्रकार कहकर प्राप्त हुए गुण और वृद्धि नहीं होते। जहाँ 'इकः' पद का निर्देश करके गुण या वृद्धि का विधान करें उसे इग्लक्षण गुण वृद्धि कहते हैं। उसी का यहाँ निषेध किया गया है। अब संक्षेप में इनका उदाहरण भी देखना चाहिए।

(क) गित् में गुण-निषेध, यथा– जि+ग्स्नु ('ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः' 3.2.139) जि+स्नु = जिष्णुः। यहाँ 'ग्स्नु' प्रत्यय के गकार की इत्संज्ञा हुई है। अतः यह गित् है। इस गित् को मानकर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इग्लक्षण गुण प्राप्त होता है, जिसका प्रकृत सूत्र से निषेध हो जाता है।

(ख) कित् में गुण-निषेध, यथा– जि+क्त = जितः। यहाँ 'क्त' प्रत्यय के ककार की इत्संज्ञा हुई है। अतः ये कित् है। इस कित् प्रत्यय को मानकर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इग्लक्षण गुण प्राप्त होता है। उसका प्रकृत सूत्र से निषेध हो जाता है। इसी प्रकार

'मुष्टः', 'मुष्टवान्' में कित् प्रत्ययों को मानकर, 'मृजेर्वृद्धिः' से इग्लक्षण वृद्धि का भी निषेध हो जाता है।

(ग) ङित् में गुण-निषेध, यथा– शृणुतः, शृण्वन्ति। यहाँ श्नु, तस् और झि सब 'सार्वधातुकमवित्' सूत्र से ङित् हैं। अतः इनको मानकर प्राप्त होने वाले गुण का प्रकृत सूत्र से निषेध हो जाता है। इसी प्रकार ङित् में वृद्धि का निषेध 'मृष्टः' आदि प्रयोगों में होता है। य जहाँ दूसरे प्रकार से गुण-वृद्धि होगी, वहाँ यह निषेध नहीं प्रवृत्त होगा। जैसे– लिगोर्गोत्रापत्यंलैगवायनः (लिगु का गोत्रापत्य)। यहाँ 'लिगु' शब्द से 'नडादिभ्यः फक्' सूत्र से 'फक्' प्रत्यय हुआ। प्रत्यय के ककार की इत्संज्ञा हुई; 'फ्' का 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्र से 'आयन्' आदेश हुआ। 'किति च' से आदि वृद्धि, 'ओर्गुणः' से अन्त्य उकार को गुण ओकार तथा अवादेश करने पर 'लैगवायनः' सिद्ध हुआ। अब यहाँ 'किति च' से वृद्धि करने में कोई बाधा नहीं हुई क्योंकि यह इग्लक्षणा वृद्धि नहीं है। वहाँ 'तद्धितेष्वचामादेः' का अनुवर्त्तन होकर 'अचाम् आदेः' (अचों में आदि अच् को वृद्धि हो) कहा गया है, इकः नहीं। अतः यहाँ निर्बाध वृद्धि हो जाती है। इसी प्रकार 'ओर्गुणः' के गुण को भी समझना चाहिए।

सूत्र – इतश्च ।।3/4/99।।

वृत्ति – ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं यत्तदन्तस्य लोपः। अभवत्। अभवताम्। अभवन्। अभवः। अभवतम्। अभवत। अभवम्। अभवाव। अभवाम।

अर्थ – ङित् लकार के स्थान पर आदेश हुआ जो इकरान्त परस्मैपद, उसके अन्त्य इकार का लोप हो।

व्याख्या – इतः षष्ठ्यन्तम्, च इति अव्ययपदम्, ङितः षष्ठ्यन्तम्, परस्मैपदस्य ('इतश्च लोपः परस्मैपदेषु' से) षष्ठ्यन्तम्।

यहाँ 'इतः' पद परस्मैपदस्य का विशेषण है। अतः विशेषण से तदन्त–विधि होकर 'इकारान्तस्य परस्मैपदस्य' बना जाता है। अलोऽन्त्य परिभाषा से यह लोप अन्त्य अल् इकार का ही होता है।

'काशिका' आदि प्राच्य ग्रन्थों में "ङित् लकार-सम्बन्धी इकार का लोप हो, परस्मैपद प्रत्ययों में" इस प्रकार सूत्र का सीधा–सीधा अर्थ किया गया है। और दीक्षित् जी का कथन है कि वैसा अर्थ करने पर भवेत् (भव+यास् त् = भव+इय्+त्=भव+इत्=भवेत्) आदि के इकार का भी लोप प्रसक्त होगा। और 'अरुदिताम्' में भी लोप प्राप्त होगा, क्योंकि वहाँ, 'रुदादिभ्यः सार्वधातुके' (7.2.76) से होने वाला इट् का आगम 'ताम्' इस ङित् लकार का अवयव है। दीक्षित् जी के अर्थ में स्थायी के इकारान्त न होने से कोई दोष नहीं आता।

सूत्र – **स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ।।8/2/29।।**

वृत्ति – पदान्ते झलि च यः संयोगस्तदाद्योः स्कोर्लोपो भवति।

अर्थ – पदान्त में या झल् परे होने पर संयोग के आदि में स्थित सकार और ककार का लोप होता है।

व्याख्या – स्कोः षष्ठी, संयोगाद्योः षष्ठ,ी अन्ते सप्तमी, च अव्ययपदम्, अनेकपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में 'संयोगान्तस्य लोपः' से लोपः की तथा 'झलो झलि' से 'झलि' की अनुवृत्ति आती है। इस प्रकार सूत्र का अर्थ बनता है– पदान्त में या झल् परे होने पर संयोग के आदि में स्थित सकार और ककार का लोप हो।

13.3 भू धातु के आशीर्लिङ् लकार के रूपों की सिद्धि प्रक्रिया

1) **भूयात्** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्ता अर्थ में 'आशिषि लिङ्लोटौ' सूत्र से आशीर्वाद अर्थ में लिङ् लकार का विधान हुआ– 'भू+लिङ्'। लिङ् के ङकार की 'हलन्त्यम्' से तथा इकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत्संज्ञा एवं 'तस्य लोपः' से लोप होकर–

'भू+ल्' बना। लकार की भी इत्संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु उच्चारणसामर्थ्य से उसकी इत्संज्ञा नहीं हुई। पुनः लकार के स्थान पर 18 तिङ् आदेशों की प्राप्ति होती है किन्तु यहाँ पर आत्मनेपद के निमित्तों से रहित 'भू' धातु से परे लकार के स्थान पर– 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' से परस्मैपद संज्ञक प्रथम नौ प्रत्ययों के तीन त्रिकों की प्रथम, मध्यम और उत्तम पुरुष संज्ञा होने पर मध्यम एवं उत्तम पुरुष के प्रसगों से रहित 'शेषे प्रथमः' सूत्र से प्रथम पुरुष में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' से एकवचन में तिप् प्रत्यय हुआ– 'भू+तिप्' पकार की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत्संज्ञा और लोप– 'भू+ति'। 'ति' प्रत्यय की 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा प्राप्त थी किन्तु उसका बाध होकर 'लिङाशिषि' से आर्धधातुक संज्ञा हुई। सार्वधातुक न होने से 'कर्तरि शप्' से शप् भी नहीं हुआ। 'भू +ति' की दशा में 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' द्वारा परस्मैपदसंज्ञक 'ति' को यासुट् का आगम हुआ– 'भू+यासुट्+ति' (टित् होने के कारण 'यासुट्' आगम 'ति' का आदि अवयव बना)। अनुबन्ध लोप होकर– 'भू+यास्+ति' हुआ। यास् को पुनः 'किदाशिषि' कित्व हुआ अर्थात् कित् न होने पर भी यास् को कित् मान लिया गया (इसका प्रयोजन आगे गुण-निषेध है)। अब 'भू+यास्+ति' में 'ति' का आर्धधातुकत्व यास् में भी ('यदागमास्तद्गुणीभूतस्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते' परिभाषा से) आ गया। अतः यास् इस आर्धधातुक को मानकर प्राप्त 'भू' के उकार के स्थान पर जो गुण है, उसका निषेध हुआ अर्थात् गुण नहीं हुआ। जब 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से प्राप्त गुण नहीं हुआ। कित् परे होने के कारण 'क्ङिति च' से गुण का निषेध हो गया। पुनः 'ति' के इकार का 'इतश्च' से लोप होकर– भू+यास्+त् बना। चूँकि स् और त् के बीच किसी स्वर का व्यवधान नहीं है, अतः 'हलोऽनन्तरा संयोगः' सूत्र से 'स और त्' की संयोग संज्ञा हुई और संयोग में आदि वर्ण सकार का 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' सूत्र से लोप होकर– 'भूयात्' पद सिद्ध हुआ।

2) **भूयास्तम्** – पूर्ववत् अकर्मक 'भू' धातु से कर्ता अर्थ में, 'आशिषि लिङ्लोटौ' सूत्र से आशीर्वाद अर्थ में लिङ् लकार हुआ– भू+लिङ्। अनुबन्ध लोप होकर 'भू+ल्' बना। लकार के स्थान पर, आत्मनेपद के निमित्तों से रहित, 'शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' से परस्मैपद प्रथम पुरुष द्विवचन में 'तस्' प्रत्यय हुआ – 'भू+तस्'। अब 'लिङ्' के ङित् होने के कारण 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से तस् के स्थान पर 'ताम्' सर्वादेश ('अनेकाल् शित्सर्वस्य' से) हुआ। अब यासुट् आगम होकर–'भू+यास्+ताम्' बना। यास् के कित्व के कारण गुण-निषेध एवं वर्ण सम्मेलन होकर – 'भूयास्तम्' पद बना।

3) **भूयासुः** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में, आशीर्वाद अर्थ द्योतित होने पर 'आशिषि लिङ्लोटौ' से लिङ् लकार का विधान किया गया –भू+लिङ्। लिङ् के इकार और ङकार की क्रमशः 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' और 'हलन्त्यम्' सूत्रों से इत्संज्ञा, लोप कार्य होकर – 'भू+ल्' बना। पुनः लकार के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद प्रथम पुरुष बहुवचन में 'बहुषु बहुवचनम्' से बहुवचन संज्ञक 'झि' प्रत्यय हुआ– भू+झि। 'झेर्जुस्' सूत्र से लिङ्स्थानी 'झि' के स्थान पर 'जुस्' सर्वादेश हुआ – भू+जुस्। जुस् के जकार की 'चुटू' सत्र से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप कार्य होकर – 'भू+उस्' बना। अब परस्मैपद संज्ञक 'उस्' को 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र से यासुट् आगम, 'आद्यन्तौ टकितौ' से 'उस्' का आदि अवयव एवं यासुट् का अनुबन्ध लोप होकर– 'भू+यास्+उस्' रूप बना। 'यास्' के 'किदाशिषि' से कित् होने के कारण 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से 'भू' के उकार को प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' से निषेध हो गया। वर्ण सम्मेलन करके –'भूयासुस्' बना। पुनः 'भूयासुस्' के सकार को 'ससजुषो रुः' से रुत्व एवं अन्ततः अवसान संज्ञक रेफ को विसर्ग आदेश होकर 'भूयासुः' पद सिद्ध हुआ।

4) **भूयाः** – पूर्ववत् अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में, आशीर्वाद अर्थ द्योतित होने पर 'आशिषि लिङ्लोटौ' से लिङ् लकार हुआ – भू+लिङ्। अनुबन्ध लोप के पश्चात् 'भू+ल्' बना। अब पूर्ववत् लकार के स्थान पर आत्मनेपद के निमित्त से रहित धातु से परस्मैपद में, प्रथम पुरुष एवं उत्तम पुरुष के प्रसंगों से विरक्त मध्यम पुरुष में 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' से 'द्वयेकयोद्विवचनैकवचने' से एकवचन की विवक्षा में 'सिप्' प्रत्यय हुआ –'भू+सिप्'। सिप् के पकार अनुबन्ध का लोप होकर–'भू+सि' बना। अब 'सि' के परस्मैपद होने के कारण 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र से 'सि' को यासुट् का आगम हुआ। टित् होने के कारण आदि में स्थित होकर –'भू+यासुट्+सि' रूप बना। यासुट् के अनुबन्धों का लोप होकर के – 'भू+यास्+सि' रूप बना। यास् के किद्वद्भाव के कारण 'भू' के इक् (ऊ) को गुण निषेध हुआ। 'सि' के इकार का 'इतश्च' से लोप होकर –'भू+यास्+स्' रूप बना। संयोग के पूर्व सकार का 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' सूत्र से लोप होकर – 'भू+यास्' = 'भूयास्' बना। पुनः अवशिष्ट सकार को 'ससजुषो रुः' से रुत्व एवं अवसान संज्ञक रेफ को 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' सूत्र से विसर्ग होकर 'भूयाः' रूप की सिद्धि हुई।

5) **भूयास्तम्** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में आर्शीवाद अर्थ में 'आशिषि लिङ्लोटौ' सूत्र से लिङ् लकार हुआ – भू+लिङ्। अनुबन्ध लोप आदि कार्य होकर–'भू+ल्' स्थिति बनी।

अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् आत्मेनपद के निमित्त से हीन धातु से परस्मैपद में, मध्यम पुरुष द्विवचन में 'द्वयेकयोर्दिवचनैकवचने' सूत्र से द्विवचन संज्ञक 'थस्' प्रत्यय का विधान हुआ 'भू+थस्'। पुनः थस् के स्थान पर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से 'तम्' सर्वादेश हुआ– भू+तम्। अब 'भू' धातु से परे परस्मैपदसंज्ञक 'तम्' को 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र

द्वारा 'यासुट्' आगम हुआ–'भू+यासुट्+तम्'। अब यासुट् का अनुबन्ध लोप होकर – 'भू+यास्+तम्' बना। यास् के किद्वद्भाव के कारण 'क्ङिति च' से गुण का निषेध हुआ और 'भू+यास्+तम्' का वर्णसम्मेलन करके 'भूयास्तम्' पद सिद्ध हुआ।

6) **भूयास्त** – पूर्ववत् अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में, आशीर्वाद अर्थ द्योतित होने के कारण 'आशिषि लिङ्लोटौ' सूत्र से लिङ् लकार का विधान किया गया – 'भू+लिङ्।' लिङ् के अनुबन्धों का लोप होकर –'भू+ल्' बना। अब पूर्ववत् लकार के स्थान पर परस्मैपद में ('शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्' से) 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से मध्यम पुरुष में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र से बहुवचन की विवक्षा में 'थ' प्रत्यय का विधान हुआ तो, स्थिति हुई – 'भू+थ'। अब 'थ' के स्थान पर पूर्ववत् 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से 'त' आदेश किया गया – 'भू+त'। चूँकि 'त' परस्मैपदसंज्ञक है। अतः 'यासुट्' सूत्र से 'त' को यासुट् का आगम हुआ, यासुट् का अनुबन्ध लोप होकर एवं टित्व के कारण आदि में स्थित होकर –'भू+यास्+त' बना। अब यास् के कित्व के कारण 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से 'भू' के अकार को प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' से निषेध और वर्णसम्मेलन करके 'भूयास्त' रूप की सिद्धि हुई।

7) **भूयासम्** – पूर्ववत् अकर्मक 'भू' धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में आशीर्वाद अर्थ में 'आशिषि लिङ्लोटौ' सूत्र द्वारा लिङ् लकार का विधान किया गया – भू+लिङ्। लिङ् के अनुबन्धों का लोप होकर – 'भू+ल्' की दशा में लकार के स्थान पर परस्मैपद में 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' से, 'अस्मद्युत्तमः' सूत्र द्वारा उत्तम पुरुष हुआ 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचेन' सूत्र से एकवचन की विवक्षा में 'मिप्' प्रत्यय हुआ – 'भू+मिप्। अब पुनः 'मिप्' के स्थान पर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र के द्वारा 'अम्' इस सर्वादेश की स्थिति में –'भू+अम्' बना। 'अम्' के परस्मैपदत्व के

कारण 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र से 'अम्' को यासुट् का आगम हुआ और यासुट् की स्थिति टित्व के कारण अम् के आदि में हुई। यासुट् का अनुबन्ध लोप होकर – 'भू+यास्+अम्' बना। अब यास् के कित्व के कारण 'क्ङिति च' से 'भू' के इक् (ऊ) को गुण का निषेध और वर्णसम्मेलन होकर–'भूयासम्' रूप की सिद्धि हुई।

8) **भूयास्व** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में आशीर्वाद अर्थ का द्योतित होन पर 'आशिषि लिङ् लोटौ' सूत्र द्वारा लिङ् लकार का विधान किया गया – 'भू+लिङ्'। लिङ् लकार के अनुबन्धों का लोप करके – 'भू+ल्' की दशा में लकार के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद में, मध्यम पुरुष में 'द्वयेकयोर्दिवचनैकवचने' सूत्र द्वारा द्विवचन की विवक्षा में 'वस्' प्रत्यय का विधान किया गया –'भू+वस्'। अब 'वस्' को पूर्ववत् 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र द्वारा यासुट् का आगम हुआ 'भू+यासुट्+वस्'। यासुट् के अनुबन्धों का लोप – 'भू+यास्+वस्'। यास् के किद्वद्भाव के कारण इगन्त अंग 'भू' के ऊकार को गुण नहीं हुआ। अब ङित्व के कारण वस् के सकार का 'नित्यं ङितः' सूत्र द्वारा लोप – 'भू+यास्+व'। पुनः पूर्ववत् वर्णसम्मेलन करके 'भूयास्व' रूप की सिद्धि हो गयी।

9) **भूयास्म** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में आशीर्वाद अर्थ के द्योतित होने पर 'आशिषि लिङ्लोटौ' सूत्र द्वारा लिङ् लकार का विधान किया गया तो, स्थिति हुई –'भू+लिङ्'। लिङ् के अनुबन्धों की इत्संज्ञा और लोप होकर – 'भू+ल्' बना। पुनः लकार के स्थान पर आत्मनेपद के निमित्त से हीन धातु से 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद में, 'अस्मद्युत्तमः' से उत्तम पुरुष में 'बहुषुबहुवचनम्' सूत्र द्वारा बहुवचन की विवक्षा में 'मस्' प्रत्यय का विधान हुआ – 'भू+मस्'। अब मस् के परस्मैपदसंज्ञक होने से 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र द्वारा यासुट् का आगम हुआ और यासुट् के टित् होने के कारण

'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र से यह मस् का आदि अवयव बना – 'भू+यासुट्+मस्'। यासुट् के अनुबन्धों का लोप करने के बाद – 'भू+यास्+मस्' बना। अब मस् के किद्वद्भाव के कारण 'भू' के ऊकार को प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' से निषेध हुआ और मस् के ङित्व के कारण उसके सकार का 'नित्यं ङितः' सूत्र द्वारा लोप होकर – 'भू+यास्+म' बना। अब पूर्ववत् वर्णसम्मेलन करने पर 'भूयास्म' पद की सिद्धि हुई।

13.4 'भू' धातु के लोट् लकार की सिद्धि में प्रयुक्त सूत्र

सूत्र – लोट् च ।।3/3/162।।

वृत्ति – विध्याद्यर्थेषु धातोर्लोट्।

अर्थ – विधि आदि अर्थों में धातु से परे लोट् प्रत्यय हो।

व्याख्या – लोट् प्रथमा विभक्ति एकवचन, च इति अव्ययपदम्, 'विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' (यह अधिकृत है)। अब अर्थ स्पष्ट होता है– विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न और प्रार्थन अर्थो में (धातोः) धातु से परे (लोट् च) लोट् प्रत्यय भी होता है। अष्टाध्यायी में इस सूत्र से पूर्व विधि आदि छः अर्थों में लिङ् का विधान किया गया है। यहाँ पुनः इन्हीं अर्थों में लोट् का विधान कर रहे हैं। तो, यह स्पष्ट हुआ कि उपर्युक्त छः अर्थों में लिङ् व लोट् दोनों लकार होते हैं। आशीर्वाद अर्थ में भी 'आशिषि लिङ्लोटौ' (3.3.173) सूत्र से लोट् लकार होता है। इस सूत्र की व्याख्या आशीर्लिङ् के प्रसंग में इस इकाई के पूर्वार्द्ध में की जा चुकी है, अतः यहाँ उसकी पुनरावृत्ति उपयोगी नहीं है।

सूत्र – एरुः ।।3/4/86।।

वृत्ति – लोट् इकारस्य उः। भवतु।

अर्थ – लोट् के इकार के स्थान पर उकार आदेश हो।

व्याख्या – एः षष्ठी विभक्ति एकवचन, उः प्रथमा विभक्ति एकवचन, लोट् षष्ठी विभक्ति एकवचन, ('लोटो लङ्वत्' से)। 'भवति' यहाँ पर लोट् के तकरोत्तरवर्ती इकार को प्रकृत सूत्र से उकार आदेश होकर 'भवतु' रूप सिद्ध होता है। ध्यातव्य है कि आशीर्वाद अर्थ में 'भवतु' बनने के पश्चात् निम्न सूत्र और अधिक प्रवृत्त होता है। यह निम्नवत् है–

सूत्र – तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम् ।।7/1/35।।

वृत्ति – आशिषि तुह्योस्तातङ् वा। परत्वात्सर्वादेशः। भवतात्।

व्याख्या – तुह्योः षष्ठी विभक्ति द्विवचन, तातङ् प्रथमा विभक्ति एकवचन, आशिषि सप्तमी विभक्ति एकवचन, अन्यतरस्याम् प्रथमा विभक्ति एकवचन। तुश्च हिश्च तुही, तयोः तुह्योः, इतरेतर द्वन्द्वः। सूत्र में 'तातङ्+आशिषि' में 'ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्' सूत्र से ङमुट् का आगम समझना चाहिए। यहाँ पर 'तु' और 'हि' के स्थान पर विकल्प से 'तातङ्' आदेश किया गया है। 'ताङ्' में ङकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा हो जाती है। अकार की भी इत्संज्ञा मान लेंगे या– उसमें अकार को उच्चारणार्थक मान लेंगे। केवल 'तात्' ही शेष रहेगा। पुनः सूत्र की वृत्ति में 'परत्वात् सर्वादेशः' कहा गया है। इसका स्पष्टीकरण अत्यन्त ही आवश्यक हैं चूँकि 'तातङ्' आदेश ङित् है, अतः 'ङिच्च' सूत्र से 'तु' और 'हि' के अन्त्य अल् (उकार एवं इकार) के स्थान पर ही होना चाहिए परन्तु अनेक अल् वाला होने से यह 'तातङ्' आदेश 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' सूत्र से सम्पूर्ण 'तु' और 'हि' के स्थान पर ही होगा क्योंकि दोनों सूत्रों (ङिच्च 1.1.52, अनेकाल्शित्सर्वस्य 1.1.54) 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' अष्टाध्यायी में पर में पढ़ा गया है और मुकाबले में पर सूत्र पूर्वसूत्र से बलवान् होता है जैसा कि कहा भी है –'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' अर्थात् तुल्यबल वालों का विरोध होने पर बाद वाला कार्य करना चाहिए। इस सूत्र की और भी विस्तृत व्याख्या अन्य ग्रन्थों (काशिका आदि) में देखें।

सूत्र – लोटो लङ्वत्।।3/4/85।।

वृत्ति – लोटस्तामादयः सलोपश्च।

अर्थ – जैसे लङ् के स्थान पर कार्य होते हैं वैसे लोट् के स्थान पर भी हों। इससे लोट् के स्थान पर 'ताम्' आदि आदेश तथा उसके (उत्तम पुरुष के) सकार का लोप हो जायेगा।

व्याख्या – लोटः षष्ठी विभक्ति एकवचन, लङ्वत् इति अव्ययपदम्। लङ् इव लङ्वत्। लङ् इति स्थानषष्ठ्यन्तात् 'तत्र तस्येव' इति वतिप्रत्ययः। अब इसका अर्थ हुआ– (लङ्वत्) लङ् के स्थान पर होने वाले कार्यों की तरह (लोटः) लोट् के स्थान पर भी कार्य होते हैं। यथा– लङ् के स्थान पर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से 'ताम्' आदि आदेश होते हैं; वे लोट् में भी होंगे। लङ् के उत्तम पुरुष में 'नित्यं ङितः' सूत्र से सकार का लोप होता है; वह लोट् में भी हो जायेगा। यहाँ वृत्ति में सूत्र का फलितार्थ दिया गया है, अक्षरार्थ नहीं।

सूत्र – तस्थस्थमिपाँ तान्तन्तामः ।।3/4/101।।

वृत्ति – ङितश्यतृर्णां तामादयः क्रमात् स्युः। भवताम्। भवन्तु।

अर्थ – ङितों के स्थान पर होने वाले तस्, थस्, थ, मिप् इन चार प्रत्ययों के स्थान पर ताम्, तम्, त, अम् ये चार आदेश क्रमशः हों।

व्याख्या – ङितः षष्ठी विभक्ति एकवचन, लस्य षष्ठी विभक्ति एकवचन (यह अधिकृत है)। तस्थस्थमिपाम् षष्ठी विभक्ति बहुवचन, तान्तन्तामः प्रथमा विभक्ति बहुवचन। ताम् च, तम् च, तश्च, अम् च– तान्तन्तामः, इतरेतरद्वन्द्वः। यथासंख्य परिभाषा से ये आदेश क्रमशः होते हैं अर्थात्, तस् = ताम्, थस् = तम्, थ = त, मिप् = अम् आदि होते हैं।

सूत्र – सेर्ह्यपिच्च ।।3/4/87।।

वृत्ति – लोटः सेर्हिः सोऽपिच्च।

अर्थ – लोट् के 'ति' को 'टि' आदेश हो और वह अपित् हो।

व्याख्या – लोटः षष्ठी विभक्ति एकवचन, सेः षष्ठी विभक्ति एकवचन, हि प्रथमा विभक्ति एकवचन, अपित् प्रथमा विभक्ति एकवचन, च इति अव्ययपदम्। सिप् प्रत्यय पित् है अतः उसके स्थान पर होने वाला आदेश भी स्थानिवद्भाव से पित् होना चाहिए परन्तु यहाँ उसे अपित्– यह अतिदेश किया जा रहा है। इसका प्रयोजन 'इहि, स्तुहि' आदि में 'सार्वधातुकमपित्' के द्वारा ङिद्वत् हो जाने से 'क्ङिति च' से गुण निषेध करना है। इसके अतिरिक्त भी अन्य प्रयोजन हैं जो यथास्थान बताये जायेंगे।

सूत्र – अतो हेः ।।6/4/105।।

वृत्ति – अतः परस्य हेर्लुक्। भव, भवतात्। भवतम्। भवत्।

अर्थ – अदन्त अंग से परे 'हि' का लुक् हो।

व्याख्या – अतः पंचमी विभक्ति एकवचन, हेः षष्ठी विभक्ति एकवचन, लुक् प्रथमा विभक्ति एकवचन ('चिणो लुक्' से)। 'अङ्गस्य' इसका विभक्ति-विपरिणाम से 'अङ्गात्' बन जाता है। 'अतः' यह 'अङ्गात्' का विशेषण है। विशेषण से तदन्त विधि होकर 'अदन्तात्' बन जाता है। 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः' सूत्र में प्रत्यय के अदर्शन की लुक् संज्ञा की गई है। अतः यहाँ समग्र 'हि' की लुक्-प्राप्ति होती है। यहाँ अलोऽन्त्य परिभाषा प्रवृत्ति नहीं होती। यहाँ अदन्त इसलिए कहा गया है कि 'इति' आदि में 'हि' का लुक् न हो जाये। पुनः तपरकरण का प्रयोजन यह है कि 'याहि, पाहि, आख्याहि' आदि में आकार से परे 'हि' का लुक् न हो जाये।

सूत्र – मेर्निः ।।3/4/89।।

वृत्ति – लोटो मेर्निः स्यात्।

अर्थ – लोट् के 'मि' को 'नि' ओदश हो।

व्याख्या – लोट् षष्ठी विभक्ति एकवचन, ('लोटो लङ्वत' से)। मेः षष्ठी विभक्ति एकवचन, निः प्रथमा विभक्ति एकवचन। यह 'नि' आदेश अनेकाल् होने से सम्पूर्ण 'मि' के स्थान पर होता है। लङ्वद्भाव के कारण लोट् के मिप् को 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से अम् आदेश प्राप्त था, उसका यह अपवाद है।

सूत्र – आडुत्तमस्य पिच्च ।।3/4/92।।

वृत्ति – लोडुत्तमस्याट् स्यात् पिच्च। हिन्योरुत्वं न, इकारोच्चारणसामर्थ्यात्।

अर्थ – लोट् के उत्तम पुरुष को आट् का आगम हो और उत्तम पुरुष पित् माना जाए। 'हिन्योः' 'हि' और 'नि' के इकार को उच्चारणसामर्थ्य से 'एरुः' सूत्र द्वारा उत्व नहीं होता।

व्याख्या – आट् प्रथमा विभक्ति एकवचन, उत्तमस्य षष्ठी विभक्ति एकवचन, पित् प्रथमा विभक्ति एकवचन, च इति अव्ययपदम्। लोटः षष्ठी विभक्ति एकवचन (लोटो लङ्वत्' से)।

यहाँ 'आट्' टित् होने से 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र से उत्तम पुरुष का आदि अवयव बनता है। पुनः 'मिप्' पित् था; अतः उसके स्थान पर होने वाल 'नि' भी पित् ठहरा। अब यदि उसे 'आट्' आगम हो जाता है तो आट् सहित 'नि' भी पित् ही रहता है। पुनः पित् को पित् करने का क्या प्रयोजन? इसका समाधान यह है कि परस्मैपद उत्तम पुरुष के एकवचन में तो पित् करने का कोई प्रयोजन नहीं है परन्तु द्विवचन (वस्) और बहुवचन (मस्) में स्वतः पित्व न होने से पित्व करना आवश्यक है। पुनः पित् करने का प्रयोजना ङिद्वद्भाव की रक्षा

('सार्वधातुकमपित्' से) करना है। इससे गुण-वृद्धि का निषध नहीं होता। यथा– 'स्तवानि', स्तवाव, स्तवाम; करवाणि, करवाव, करवाम्; मार्जनि, मार्जाव, मार्जाम आदि।

सूत्र – आनि लोट् ।।8/4/16।।

वृत्ति – उपसर्गस्थान्निमित्तात्परस्य लोडादेशस्यानीत्यस्य नस्य णः स्यात्। प्रभवाणि।

अर्थ – उपसर्ग में स्थित निमित्त (ऋ, र्, ष्) से परे लोट् के स्थान पर आदेश होने वाले 'आनि' के नकार को णकार आदेश हो।

व्याख्या – ध्यान देने की बात है कि णत्व विधायक समस्त सूत्र अष्टाध्यायी के अष्टम अध्याय में पढ़े गये हैं। दूसरी बात यह कि यहाँ पर इस सूत्र की कोई विशेष उपयोगिता नहीं है। अतः ज्ञानार्जन हेतु इसे कौमुदी के अन्तर्गत भैमी व्याख्यादि टीकाओं में देखें।

सूत्र – नित्यं ङितः ।।3/4/99।।

वृत्ति – सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः। अलोऽन्तस्येति सलोपः। भवाव। भवाम।

अर्थ – ङित् लकार के सकारान्त उत्तम पुरुष का नित्य लोप हो जाता है। अलोऽन्त्य परिभाषा के बल से अन्त्य अल् (सकार) का ही लोप होता है।

व्याख्या – नित्यम् ति द्वितीयैकवचनान्तमस्ति क्रियाविशेषणम्। ङितः षष्ठी विभक्ति एकवचन, क्तस्य षष्ठी विभक्ति एकवचन (यह पूर्ववत् अधिकृत है)। सः षष्ठी विभक्ति एकवचन, उत्तमस्य षष्ठी विभक्ति एकवचन, ('स उत्तमस्य' सूत्र से), लोपः प्रथमा विभक्ति एकवचन ('इतश्च' से)। 'सः' यह 'उत्तमस्य' का विशेषण हैं अतः विशेषण से तदन्तविधि होकर 'सकारान्तस्य उत्तमस्य' बन जाता है। सम्पूर्ण सकारान्त उत्तम पुरुष का लोप प्राप्त होने पर यहाँ अलोऽन्त्य परिभाषा उपस्थित होकर केवल अन्त्य अल् (सकार) का ही लोप करती है। जैसे– भू धातु से लोट्

लकार उत्तम पुरुष के द्विवचन की विवक्षा में वस् आदेश, आट् का आगम, शप्, गुण, अवादेश तथा सवर्णदीर्घ करने पर भवावस् की स्थिति बनी। अब 'लोटो लङ्वत' से लङ्वद्भाव के कारण 'नित्यं ङितः' से सकार का (अलोऽन्त्यपरिभाषा से) लोप होकर भवाव प्रयोग सिद्ध होता है।

13.5 भू धातु के लोट् लकार के रूपों की सिद्धि प्रक्रिया

1) भवतु – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में आशीर्वाद अर्थ में 'आशिषि लिङ्लोटौ' सूत्र या विधि आदि अर्थों के सूचित होने पर 'लोट् च' से लोट् लकार का विधान हुआ – 'भू+लोट्। लोट् के अनुबन्धों का लोप होकर – 'भू+ल्' की स्थिति में लकार की भी इत्संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु उच्चारण सामर्थ्य से उसकी इत्संज्ञा का निषेध हो जाता है। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् आत्मेनपद के निमित्त से हीन होने की दशा में 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद में मध्यम पुरुष एवं उत्तम पुरुष के विषय से हीन 'शेषे प्रथमः' सूत्र द्वारा प्रथम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से एकवचन की विवक्षा में 'तिप्' प्रत्यय का विधान हुआ–'भू+तिप्'। तिप् के पकार अनुबन्ध को लोप होकर – 'भू+ति' बना। अब चूंकि 'ति' की सार्वधातुक संज्ञा हुई है अतः 'कर्तरि शप्' से शप् प्रत्यय हुआ– 'भू+शप्+ति'। शप् के अनुबन्धों का लोप होकर 'भू+अ+ति' बना। शप् के अकार की शित् होने के कारण सार्वधातुक संज्ञा 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से और सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग 'भू' ऊकार को गुण होकर – 'भो+अ+ति'। 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अव् आदेश होकर – 'भव्+अ+ति = 'भवति' बनता है। अब चूंकि यह लोट् लकार का विषय है, अतः 'एरुः' सूत्र से लोट् सम्बन्धी 'भवति' के इकार का उकार आदेश होकर –'भवतु' रूप सिद्ध हुआ।

पुनः विकल्प से आशीर्वाद अर्थ में 'तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्' सूत्र से 'तु' के स्थान पर तातङ् (तात्) आदेश होकर –'भवतात्' रूप की सिद्धि होती है। इस प्रकार लोट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में 'भवतु' एवं 'भवतात्' ये दो प्रकार के क्रियापद सिद्ध होते हैं।

2) **भवताम्** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में पूर्ववत् 'लोट् च' सूत्र द्वारा लोट् लकार का विधान हुआ– 'भू+लोट्'। लोट् के अनुबन्धों का लोप होकर – 'भू+ल्'। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद, प्रथम पुरुष एकवचन में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से द्विवचन की विवक्षा मे 'तस्' प्रत्यय का विधान हुआ – 'भू+तस्। अब 'लोटो लङ्वत्' से लोट् सम्बन्धी 'तस्' के ङित् हो जाने पर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से तस् को ताम् सर्वादेश हुआ –'भू+ताम्'। 'तस्' की ही भाँति 'ताम्' की भी सार्वधातुक संज्ञा एवं 'कर्तरि शप्' शप् होकर 'भू+शप्+ताम्' बना। पुनः शप् के अनुबन्धों का लोप होकर – 'भू+अ+ताम् बना।' अब शप् के अकार के शित् होने के कारण सार्वधातुकत्वेन 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से भू के इक् को गुण होकर 'भो+अ+ताम् बना। अब 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ओकार को अवादेश होकर – 'भव्+अ+ताम्' बना। पुनः वर्णसम्मेलन होकर– 'भवताम्' रूप की सिद्धि हुई।

3) **भवन्तु** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में पूर्ववत् 'लोट् च' सूत्र से लोट् लकार का विधान हुआ– भू+लोट्। लोट् के अनुबन्धों का लोप होकर – भू+ल् की दशा में लकार के स्थान पर परस्मैपद प्रथम पुरुष बहुवचन में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र से 'झि' प्रत्यय का विधान हुआ – भू+झि। अब 'झि' के अवयव झकार को 'झोऽन्तः' सूत्र से 'अन्त्' आदेश हुआ – भू+अन्त् इ = भू+अन्त्+इ = भू+अन्ति बना। पुनः 'अन्ति' की 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा हुई। और 'कर्तरि शप्' से शप् का आगम – भू+शप्+अन्ति। शप् के अनुबन्धों का लोप – भू+अ+अन्ति। अब शित् अकार के सार्वधातुक होने के कारण

'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से 'भू' को गुण – भो+अ+अन्ति। 'एचोऽयवायावः' से अवादेश – भव्+अ+अन्ति। पुनः भव+अन्ति बना। 'अतो गुणे' सूत्र से पररूप होकर– भवन्ति बना। अब लोट् का विषय होने से 'एरुः' सूत्र द्वारा 'भवन्ति' के इकार को उकार आदेश होकर – 'भवन्तु' रूप सिद्ध हुआ।

4) **भव** – अकर्मक 'भू' धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में विध्यादि अर्थों के द्योतित होने पर 'लोट् च' सूत्र से लोट् लकार का विधान किया गया – भू+लोट्। लोट् के अनुबन्धों का पूर्व की भाँति लोप होकर– भू+ल् बना। अब लकार के स्थान पर आत्मनेपद के निमित्त से रहित धातु से 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद में, प्रथम पुरुष के विषय से पृथक् 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र द्वारा मध्यम पुरुष में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से एकवचन में सिप् प्रत्यय का विधान हुआ – भू+सिप्। सिप् के पकार अनुबन्ध का लोप – भू+सि। 'सि' की सार्वधातुक संज्ञा होने से 'कर्तरि शप्' से 'शप्' प्रत्यय का विधान – भू+शप्+सि। शप् के अनुबन्ध का लोप होने पर – भू+अ+सि। पूर्ववत् इगन्त अंग 'भू' को गुण, अवादेश होकर – भव्+अ+सि =भवसि रूप बना। अब 'सेर्ह्यपिच्च' सूत्र से 'सि' को 'हि' आदेश होकर – भवहि बना; हि का 'अतो हेः' से लुक् प्राप्त था, उसका बाध करके 'तुह्योस्तातङ्ङाशिष्यन्यतरस्याम्' सूत्र से 'सि' के हि के स्थान पर तातङ् (तात्) आदेश हुआ – भवतात्। चूंकि वह तातङ् आदेश विकल्प से हुआ है, अतः न होने के पक्ष में 'अतो हेः' सूत्र से 'हि' का लुक् होकर 'भव'रूप सिद्ध होता है। इस प्रकार मध्यम पुरुष एकवचन में दो रूप – 'भव' एवं 'भवतात्' सिद्ध होते हैं।

5) **भवतम्** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में 'लोट् च' सूत्र से लोट् लकार का विधान किया गया– भू+लोट्, अनुबन्ध लोप होकर – भू+ल् बना। अब लकार के

स्थान पर परस्मैपद में, मध्यम पुरुष द्विवचन में थस् प्रत्यय का विधान हुआ – भू+थस्। अब लोट् लकार ङित् नहीं है किन्तु 'लोटो लङ्वत्' से 'लोट्' लकार में भी ङिद्वद्भाव मानकर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' से थस् के स्थान पर 'तम्' आदेश हुआ – भू+तम्। पुनः तम् के सार्वधातुकत्वेन 'कर्तरि शप्' सूत्र से शप् प्रत्यय हुआ– भू+शप्+तम्। शप् के अनुबन्धों का लोप– भू+अ+तम्। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र द्वारा इगन्त अंग 'भू' को गुण होकर– भो+अ+तम् बना और 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अवादेश होकर– भव्+अ+तम् बना। पुनः पूर्ववत् वर्णसम्मेलन करके मध्यम पुरुष द्विवचन में 'भवतम्' रूप की सिद्धि हुई।

6) **भवत** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में पूर्ववत् 'लोट् च' सूत्र द्वारा लोट् लकार का विधान हुआ– भू+लोट्। लोट् के अनुबन्धों का लोप होकर– भू+ल् बना। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद, मध्यम पुरुष में 'बहुषु बहुवचनम्' से बहुवचन संज्ञक 'थ' प्रत्यय का विधान किया गया। लोट् स्थानी 'थ' को 'लोटो लङ्वत्' सूत्र से ङिद्वद्भाव होकर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र द्वारा 'थ' के स्थान पर 'त' सर्वादेश का विधान हुआ– भू+त। अब 'त' के सार्वधातुक होने के कारण एवं कर्त्ता अर्थ में होने के कारण 'कर्तरि शप्' से शप् का विधान हुआ – भू+शप्+त्। शप् के अनुबन्धों का लोप हुआ – भू+अ+त। अब सार्वधातुक अ (शप्) के परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुयोः' सूत्र से इगन्त अंग 'भू' को गुण होकर– भो+अ+त बना। 'एचोऽयवायावः' सूत्र से अवादेश होकर भव्+अ+त एवं वर्णसम्मेलन होकर 'भवत' रूप सिद्ध हुआ।

7) **भवानि** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु के कर्तृत्व की विवक्षा में पूर्ववत् 'लोट् च' सूत्र से लोट् लकार का विधान हुआ– भू+लोट्। लोट् के अनुबन्धों का लोप होकर– भू+ल् बना। अब लकार के स्थान पर आत्मेनपद के निमित्त से रहित धातु से 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्'

सूत्र द्वारा परस्मैपद में, प्रथम पुरुष एवं मध्यम पुरुष के विषय से रहित होने की दशा में 'अस्मद्युत्तमः' सूत्र से उत्तम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' से एकवचन की विवक्षा में 'मिप्' प्रत्यय का विधान हुआ– भू+मिप्। अनुबन्ध लोप होकर– 'भू+मि' बना। 'मेर्निः' सूत्र से 'मि' के स्थान पर 'नि' सर्वादेश हुआ– भू+नि। 'कर्तरि शप्' से शप् का विधान एवं अनुबन्ध लोप होकर– भू+अ+नि हुआ। 'नि' के उत्तम पुरुष विषयक होने से 'आडुत्तमस्य पिच्च' सूत्र से आट् का आगम हुआ और आट् के टित्व के कारण यह 'नि' का आदि अवयव बना– भू+अ+आनि (टकार का लोप)। इगन्त अंग 'भू' को गुण, अवादेश होकर– भू+अ+आनि, भव्+आनि बना। अब 'अकः सवर्णे दीर्घः' से सवर्ण दीर्घ एकादेश (अ+आ = आ) होकर 'भवानि' रूप की सिद्धि हुई।

8) भवाव – पूर्ववत् अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में 'लोट् च' सूत्र द्वारा लोट् लकार का विधान हुआ– भू+लोट्। लोट् के अनुबन्धों का लोप होकर– भू+ल् बना। अब लकार के स्थान पर पहले की ही भाँति आत्मनेपद का विषय उपस्थित न होने के कारण 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र से परस्मैपद में, उत्तम एवं मध्यम पुरुष के प्रसंगाभाव में 'अस्मद्युत्तमः' से उत्तम पुरुष में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से द्विवचन की विवक्षा में 'वस्' प्रत्यय का विधान हुआ– भू+वस्। कर्त्रर्थक सार्वधातुक वस् के परे रहते 'कर्तरि शप्' से 'भू' धातु को (धातु के आगे) शप् का विधान हुआ; शप् के अनुबन्ध का लोप हुआ– भू+अ+वस्। उत्तम पुरुषविषयक वस् प्रत्यय को 'आडुत्तमस्य पिच्च' सूत्र से आट् का आगम, अनुबन्ध लोप – भू+अ+आ+वस्। इगन्त अंग 'भू' को गुण होकर – भो+अ+आ+वस्। 'एचोऽयवायावः' सूत्र से अव् आदेश– भव्+अ+आ+वस्। भव्+अ+आ+वस् **>** भव+आ+वस् **>** भव+आवस् (चूंकि आट् का आगम वस् को हुआ है अतः मित्रभाव से वह पहले वस् के साथ सम्बद्ध होगा)। अब

'अकः सवर्णे दीर्घः से सवर्णदीर्घ एकादेश होकर– 'भवावस्' बना। अब 'लोटो लङ्वत्' से लोट् के ङिद्वद्भाव के कारण 'नित्यं ङितः' सूत्र द्वारा सकार का लोप होकर– 'भवाव' रूप सिद्ध हुआ।

9) भवाम – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में 'लोट् च' सूत्र द्वारा लोट् लकार का विधान हुआ– भू+लोट्। अब लोट् के अनुबन्धों का लोप होकर– भू+ल् की दशा में लकार के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद में, 'अस्मद्युत्तमः' से उत्तम पुरुष में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र द्वारा बहुवचन की विवक्षा में 'मस्' प्रत्यय का विधान किया गया– भू+मस्। अब मस् के कर्त्रर्थक सार्वधातुक होने की दशा में 'कर्तरि शप्' सूत्र द्वारा धातु से शप् प्रत्यय का विधान हुआ– भू+शप्+मस्। शप् के अनुबन्ध का लोप– भू+अ+मस्। अब मस् के उत्तम पुरुषविषयक होने के कारण 'आडुत्तमस्य पिच्च' सूत्र द्वारा मस् को आट् का आगम, टित्व के कारण आदि अवयवत्व, अनुबन्ध लोप होकर– भू+अ+मस् बना। अब इगन्त अंग 'भू' के उकार को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण होकर– भो+अ+मस् बना। ओकार को 'एचोऽयवायावः' से गुण होकर– भव्+अ+मस् हुआ। पुनः भव+आमस् की स्थिति में ही 'अकः सवर्णे दीर्घः' सूत्र से लोट् के ङिद्वद्भाव के कारण 'नित्यं ङितः' सूत्र द्वारा भवामस् के सकार का लोप होकर– 'भवाम' रूप की सिद्धि हुई।

13.6 सारांश

इस इकाई का विधिवत् अध्ययन करने के पश्चात् आप 'भू' धातु के लिङ् (आशीलिङ्) लकार एवं लोट् लकार के रूपों की विधिवत् समझ सकेंगे। आप यह भी जान चुके हैं कि भूयात्, आदि की सिद्धि में यासुट् आगम कैसे और क्यों होता है? भूयात् से लेकर भूयास्म तक की आशिष्यर्थक प्रक्रिया

भी आप जान चुके हैं। आप यह भी जान चुके हैं कि कैसे आत्मनेपद में सीयुट् और परस्मैपद में यासुट् का विधान किया जाता है। लकार के ङित् होने का प्रयोजन की विस्तारपूर्वक समझाया गया है। दूसरी ओर विध्यादि अर्थों में विहित लोट् लकार के 'भवतु' एवं आशीर्वाद अर्थ में 'भवतात्' रूप की प्रक्रिया को भी स्पष्ट किया गया है, जिसका अध्ययन आप कर चुके हैं। लोट् लकार के 'लोटो लङ्वत्' से लङ्वत् भाव करने का प्रयोजन भी आप विधिवत् समझ चुके हैं। साथ ही 'भवतु' से लेकर 'भवाम' तक की पूर्ण प्रक्रिया का ज्ञान करने के साथ ही साथ आप 'आट्' आगम, पित्व एवं अन्य उपयोगितात्मक सिद्धि-विधानों का भी ज्ञान कर चुके हैं।

13.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी, गोरखपुर, गीताप्रेस।
2. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या गोविन्दाचार्य, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती।
3. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, धरानन्द, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास।
4. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, भीमसेन, लघुसिद्धान्तकौमुदी, (भाग–1–6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन।
5. शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय, (भाग–1–3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

13.8 अभ्यास प्रश्न

(i) लोट् लकार किस अर्थ में होता है?

(ii) 'भूयात्' की सिद्धि कीजिए।

(iii) 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र की व्याख्या कीजिए।

(iv) लोट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन की सिद्धि कीजिए।

(v) 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र की व्याख्या कीजिए।

इकाई 14 भू धातु (परस्मैपद) लङ् एवं विधिलिङ् लकार

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 भू धातु के लङ् लकार की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्र

14.3 भू धातु के लङ् लकार के रूपों की सिद्धि प्रक्रिया

14.4 भू धातु के विधिलिङ् लकार की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्र

14.5 भू धातु के विधिलिङ् लकार के रूपों की सिद्धि प्रक्रिया

14.6 सारांश

14.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.8 अभ्यास प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

- लङ् लकार एवं विधिलिङ् लकार की सिद्धि में प्रयुक्त सूत्रों का ज्ञान कर सकेंगे।
- लङ् लकार में अट् आगम की प्रक्रिया जान सकेंगे।
- 'अगच्छत्' 'अगच्छताम्' आदि रूपों का प्रयोग समझ सकेंगे।
- भवेत् से लेकर भवेम तक विधिलिङ् लकार की रूप-सिद्धि कर सकेंगे
- लङ् लकार एवं विधिलिङ् लकार का अर्थ जान सकेंगे।
- विधि आदि छः अर्थों का ज्ञान कर सकेंगे।
- उपर्युक्त लकारों का वाक्य में यथोचित प्रयोग कर सकेंगे।

- आशीर्लिङ् एवं विधिलिङ् का भेद जान सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

यहाँ अकारादि क्रम में ही पुनः लोट् के बाद लङ् लकार की रूप सिद्धि प्रक्रिया दी गयी है उसके बाद ङित् लकारों में विधिलिङ् या लिङ् लकार की सिद्धि बतायी गयी है। यहाँ एक बात यह भी स्पष्ट कर देनी चाहिए कि विधि आदि छः अर्थों में विहित लिङ् लकार के बाद ही लोट् का क्रम आता है इसलिए 'लोट् च' सूत्र में 'च' पद द्वारा कहा गया है कि लोट् भी विधि आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। यहाँ पर विधि आदि छः अर्थों को विस्तार से समझाया गया है। अनद्यतन लङ् में होने वाले अट् आगम एवं उसकी उदात्तता को भी स्पष्ट किया गया है। विधि आदि छः में से प्रथम चार (विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण और अधीष्ट) तो किसी न किसी प्रकार की प्रेरणायें ही हैं। इन्हें कौमुदी आदि उच्च ग्रन्थों में देखना चाहिए। यहाँ पुनः स्मरण करा देना उचित होगा कि विधि अर्थ में लिङ् सार्वधातुक है, जबकि आशीर्वाद अर्थ में वह आर्धधातुक है इसीलिए दोनों की रूप-सिद्धि-प्रक्रिया में पर्याप्त अन्तर है। यद्यपि 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र द्वारा 'तस्' आदि के स्थान पर 'ताम्' आदि आदेशों को हम लोट् लकार में पढ़ चुके हैं तथापि औचित्यवश हम उसका अध्ययन यहाँ भी करेंगे। यहाँ पर हम 'भवेत्' की सिद्धि में 'लोपो व्योर्वलि' आदि सूत्रों का अध्ययन करेंगे। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि लङ् एवं विधिलिङ् लकार के कुछ सूत्रों की व्याख्या पूर्व इकाई में की गई है, अतः यहाँ उन सूत्रों की व्याख्या की उपयोगिता नहीं है। यहाँ दोनों लकारों के अन्तर्गत उन्हीं सूत्रों की व्याख्या की जा रही है, जिनकी पुनरावृति न हुई हो।

14.2 भू धातु के लङ् लकार की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्र

सूत्र – अनद्यतने लङ्।।3/2/111।।

वृत्ति – अनद्यतनभूतार्थवृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

अर्थ – अनद्यतन-भूतकालिक क्रिया के वाचक धातु से लङ् (लकार) हो।

व्याख्या – 'अनद्यतने' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'लङ्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'भूते' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'धातोः' पंचमी विभक्ति एकवचन, 'प्रत्ययः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'परः' प्रथमा विभक्ति एकवचन (ये सब पूर्ववत् अधिकृत हैं)। इस सूत्र में अनेक पद हैं। 'मैंने आज सुबह भोजन किया' यहाँ भूत तो है किन्तु अनद्यतन नहीं है। अतः यहाँ लङ् का स्थल नहीं है। यह सामान्य भूतकाल है। 'मैंने कल स्नान किया' यहाँ अनद्यतन भूत है, अतः यह लङ् का विषय है। आज प्रायः विद्यार्थी स्वच्छन्द भाव से लङ् का प्रयोग करते हैं, जो ठीक नहीं है। सामान्यभूत की दशा में लुङ् का ही प्रयोग उचित होता है। कल, परसों या उसके पहले के काल के लिए ही अनद्यतन कहा जाता है और वहीं लङ् का प्रयोग होता है।

'अनद्यतने' पद में बहुव्रीहि समास है। अविद्यमानाऽद्यतनो यस्मिन् सोऽनद्यतनः (कालः), तस्मिन् अनद्यतने। जहाँ अद्यतन और अनद्यतन दोनों प्रकार के भूतकाल का मिश्रण होगा वहाँ लङ् का प्रयोग नहीं होगा, अपितु सामान्य भूतकाल में लुङ् का ही प्रयोग होगा। जैसे–'अद्य ह्यश्च अभुक्ष्महि (हमने आज और कल खाया)।

सूत्र – लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ।।6/4/71।।

वृत्ति – एष्वङ्गस्याट्।

अर्थ – लुङ्, लङ् या लृङ् लकार परे होने पर अंग को अट् का आगम हो और वह उदात हो।

व्याख्या – लुङ्लङ्लृङ्क्षु सप्तमी विभक्ति बहुवचन, अट् प्रथमा विभक्ति एकवचन, उदात्तः प्रथमा विभक्ति एकवचन, अङ्गस्य षष्ठी विभक्ति एकवचन, (यह पूर्वतः अधिकृत है)। यहाँ पर उपर्युक्त तीनों लकारों के परे रहने पर अंग को 'अट्' के आगम का विधान किया गया है। वह अट् आगम अंग (भू आदि) का अवयव हो जाया करता है। अट् के टकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा हुई है और 'तस्य लोपः' सूत्र से लोप होकर 'अ' मात्र शेष रहता है। पुनः 'आद्यन्तौ टकितौ' से अट् आगम अंग के आदि में बैठता है। अट् को उदात्त कहा गया है। अतः अभवत्' आदि आद्युदात्त हो जाते हैं। ल. सि. कौ.में स्वर प्रक्रिया नही है, अतः उदात्त, अनुदात, स्वरित के ज्ञान के लिये विद्यार्थी को कौमुदी या काशिका को देखना चाहिए। अंग संज्ञा के विषय में इकाई 11 में बताया जा चुका है। 'यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादिप्रत्ययेऽङ्गम्' से 'भू' धातु से लकार विधान एवं शप् आदि होने पर बने 'भव' की अंग संज्ञा होती है। उसी के पूर्व अट् की स्थिति बतायी जा रही है।

सूत्र – इतश्च।।3/4/100।।

इस सूत्र की व्याख्या इकाई 13 में उपलब्ध है। विद्यार्थी वहीं इस सूत्र का अध्ययन करें।

सूत्र – तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः ।।3/4/101।।

इस सूत्र की व्याख्या इकाई 13 में की गई है। अतः यहाँ पर इसकी पुनरावृत्ति अप्रासंगिक है।

सूत्र – कर्तरि शप्।।3/1/68।।

सूत्र – तिङ्शित्सार्वधातुकम्।। 3/4/113।।

इन सूत्रों की व्याख्या इकाई 11 में की गई है।

सूत्र – शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्।।1/3/78।।

इस सूत्र की व्याख्या भी इकाई 11 में की गई है।

सूत्र – तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः ।।1.4.101।।

इस सूत्र की व्याख्या इकाई 11 में की गई है।

सूत्र – तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः ।।1/4/102।।

इस सूत्र की व्याख्या इकाई 11 में की गई है।

सूत्र – युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः ।।1/4/105।।

इस सूत्र की व्याख्या इकाई 11 में की गई है।

सूत्र – अस्मद्युत्तमः ।।1/4/107।।

इस सूत्र की व्याख्या इकाई 11 में की गई है।

सूत्र – शेषे प्रथमः ।।1/4/108।।

इस सूत्र की व्याख्या इकाई 11 में की गई है।

सूत्र – सार्वधातुकार्धधातुकयोः ।।7/3/84।।

गुण विधायक इस सूत्र की व्याख्या इकाई 11 में की गई है।

शेष सूत्रों का यथावसर उपयोग सिद्धि-प्रक्रिया में ही स्पष्ट किया जायेगा। विधार्थी वहन देखें।

14.3 भू धातु के लङ् लकार के रूपों की सिद्धि प्रक्रिया

1) अभवत् – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में 'अनद्यतन भूतकाल' गम्यमान होने की स्थिति में 'अनद्यतने लङ्' से लङ् लकार का विधान किया गया है – 'भू+लङ्'। लङ् के ङकार की 'हलन्त्यम्' सूत्र द्वारा एवं अकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र द्वारा इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप – 'भू+ल्'। लकार की भी इत्संज्ञा 'लशक्वतद्धिते' सूत्र से प्राप्त होती है किन्तु उच्चारणसामर्थ्य से अथवा 'लस्य' इस अधिकर के सामर्थ्य से 'लशक्वतद्धिते' सूत्र द्वारा लकार की इत्संज्ञा नहीं होती

है। अब 'भू+ल्' की स्थिति में लकार के स्थान पर प्राप्त 18 तिङ् प्रत्ययों की परस्मैपद संज्ञा होती है किन्तु 'तङानावात्मनेपदम्' से बाद के नौ प्रत्ययों की आत्मनेपद संज्ञा हो जाने पर 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' से प्रथम नौ (तिप् से मस् तक) की परस्मैपद संज्ञा होती है। 'तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः' सूत्र से 18 तिङ् प्रत्ययों के छः त्रिक (3 त्रिक परस्मैपद के एवं तीन त्रिक आत्मनेपद के) बनते हैं। अब उन त्रिकों की प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष एवं उत्तम पुरुष संज्ञा होती है। मध्यम पुरुष एवं उत्तम पुरुष के निमित्तों से रहित होने पर 'शेषे प्रथमः' सूत्र द्वारा प्रथम पुरुष में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने से एकवचन की विवक्षा में तिप् प्रत्यय का विधान हुआ –'भू तिप्'। पकर की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप होकर 'भू+ति' बना। अब लङ् लकार सम्बन्धी 'ति' के परे होने पर 'भू' धातु को 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से अट् का आगम हुआ और यह अट् टित् होने के कारण 'भू' धातु का आदि अवयव बना– 'अट्+भू+ति'। टकार की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत्संज्ञा और लोप– 'अ+भू+ति'। 'ति' की 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा और 'कर्तरि शप्' से शप् प्रत्यय होकर – अ भू+शप्+ति' बना। शप् के अनुबन्धों को लोप –'अभू+अ+ति'। शित् होने के कारण भू से परे 'अ' (शप्) की सार्वधातुक संज्ञा और 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग 'भू' के ऊकार को गुण होकर 'अभो+अ+ति' बना। 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अवादेश होकर – 'अभव्+अ ति' > 'अभवति' बना। अब चूंकि 'ति' ङित् लकारस्थ है और परस्मैपद है अतः उसके इकार का 'इतश्च' सूत्र से लोप होकर 'अभवत्' यह क्रियापद सिद्ध हुआ।

2) **अभवताम्** – पूर्ववत् 'भू' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में, अनद्यतन भूतकाल गम्यामान होने की दशा में 'अनद्यतने लङ्' सूत्र द्वारा लङ् लकार का विधान हुआ – 'भू+लङ्'। लङ् लकार के अनुबन्धों का लोप होकर – 'भू+ल्'

बना। अब लकार के स्थान पर आत्मनेपद के निमित्तों से रहित धातु से 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद संज्ञक नौ प्रत्ययों की प्राप्ति हुई। उनमें से मध्यम पुरुष एवं उत्तम पुरुष के निमित्तों से रहित होने पर 'शेषे प्रथमः' सूत्र से प्रथम पुरुष में ही 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचेन' सूत्र द्वारा द्विवचन की विवक्षा में 'तस्' प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+तस्'। 'तस्' के ङित् स्थानी होने के कारण 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से तस् के स्थान पर 'ताम्' सर्वादेश हुआ – भू+ताम्। अब लङ् (तस्) के परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र से अंग 'भू' को अट् का आगम हुआ, अनुबन्ध टकार का लोप हुआ – अभ+ताम्। अब कर्त्रर्थक सार्वधातुक 'ताम्' के परे रहते 'कर्तरि शप्' सूत्र से शप् प्रत्यय हुआ, शप् के अनुबन्ध का लोप होकर– 'अभू+अ+ताम्' बना। पुनः अ (शप्) सार्वधातुक के परे रहने के कारण 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से इगन्त अंग 'भू' के ऊकार को गुण होकर– 'अभो+अ+ताम्' बना। अब 'एचोऽयवायावः' से ओकार को 'अव्' आदेश होकर – 'अभव्+अ+ताम्' हुआ। आगे सभी का वर्णसम्मेलन करने पर 'अभवताम्' यह रूप सिद्ध हुआ।

3) **अभवन्** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्त्ता अर्थ में, अनद्यतन भूतकाल गम्यमान होने की दशा में 'अनद्यतने लङ्' सूत्र से लङ् लकार का विधान हुआ– भू+लङ्। अनुबन्धों का पूर्ववत् लोप होकर– 'भू+ल्' हुआ।

अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' से परस्मैपद संज्ञक प्रत्ययों में से मध्यम पुरुष एवं उत्तम पुरुष के विषय से हीन होने पर 'शेषे प्रथमः' सूत्र द्वारा प्रथम पुरुष में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र द्वारा बहुवचन की विवक्षा में 'झि' प्रत्यय का विधान हुआ–'भू+झि'। ऐसी स्थिति में 'झोऽन्तः सूत्र से झकार के स्थान पर अन्त आदेश होकर– 'भू+अन्त्+इ > भू+अन्ति। लङ् का विषय होने पर पूर्ववत् 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र से अंग 'भू' को अट्

का आगम, अनुबन्ध लोप, टित् होने से आदि अवयवत्व– अभू+अन्ति। 'कर्तरि शप्' से अभू से परे 'शप्' प्रत्यय, अनुबन्ध लोप – अभू+अ+अन्ति। सार्वधातुक अ (शप्) के परे होने के कारण 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र द्वारा 'भू' के ऊकार को गुण, अवादेश होकर – 'अभव+अन्ति' बना और पुनः 'अतो गुणे' सूत्र द्वारा पररूप होकर 'अभवन्ति' हुआ। अब चूंकि लकारोत्तरवर्ती इकार ङित् विषयक है और परस्मैपद का है, इसलिए 'इतश्च' सूत्र द्वारा उस इकार का लोप होकर– 'अभवन् त्' बना। पुनः 'न् त्' की संयोग संज्ञा होने के कारण 'संयोगान्तस्य लोपः' सूत्र द्वारा संयोग के अन्त में विद्यमान 'त्' का लोप होकर – 'अभवन्' क्रियापद सिद्ध हुआ।

4) अभवः – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में, अनद्यतन भूतकाल गम्यमान होने की स्थिति में ही 'अनद्यतने लङ्' सूत्र द्वारा लङ् लकार का विधान हुआ– 'भू+लङ्। अब लङ् के अनुबन्धों का लोप हुआ– 'भू+ल्। लकार के स्थान पर पूर्ववत् आत्मनेपद के निमित्तों से हीन धातु से 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद संज्ञक प्रत्ययों में से, प्रथम पुरुष एवं मध्यम पुरुष के विषय से हीन होने के कारण 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र द्वारा मध्यम पुरुष में, एकवचन की विवक्षा में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र द्वारा एकवचन का 'सिप्' प्रत्यय हुआ– 'भू+सिप्'। पकार अनुबन्ध का लोप होकर– 'भू+सि' हुआ। अब लङ् का विषय होने पर लङ् स्थानी 'सि' के परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र से 'भू' को अट् का आगम, टकार अनुबन्ध का लोप और टित्व के कारण 'भू' के आदि में स्थित होकर– 'अभू+सि' बना। अब कर्त्ता अर्थ में विद्यमान सार्वधातुक 'सि' के परे रहते 'कर्तरि शप्' सूत्र द्वारा 'भू' से पर शप् प्रत्यय हुआ; अनुबन्ध लोप होकर 'अभू+अ+सि' बना। अब 'अ' (शप्) सार्वधातुक के परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से 'भू' को गुण अवादेश होकर– 'अभव्+अ+सि' बना। यहाँ ध्यान देने की बात है कि इगन्त अंग को गुण कहने का तात्पर्य 'अलोऽन्त्यस्य' परिभाषा' से 'भू' के

अन्त्य वर्ण 'ऊ' को गुण होने से है। यही बात सभी स्थलों पर समझनी चाहिए। अब– 'अभवसि' की स्थिति में 'इतश्च' सूत्र से सकारोत्तरवर्ती इकार का लोप और अवशिष्ट सकार को रुत्व विसर्ग होकर 'अभवः' रूप सिद्ध हुआ।

5) **अभवतम्** – 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में, अनद्यतन भूतकाल गम्यमान होने की दशा में 'अनद्यतने लङ्' सूत्र से लङ् लकार का विधान किया गया– 'भू+लङ्। लङ् के अनुबन्धों का लोप– भू+ल्। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद की स्थिति में ('शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' से), प्रथम पुरुष एवं उत्तम पुरुष के विषय से रहित 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से मध्यम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र द्वारा द्विवचन की विवक्षा में 'थस्' प्रत्यय हुआ– 'भू+थस्'। अब ङित् का विषय होने के कारण 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से थस् के स्थान पर 'तम्' सर्वादेश हुआ– 'भू+तम्'। अब लङ् (तम्) के परे रहते 'भू' धातु को अट् का आगम हुआ, टकार की इत्संज्ञा और लोप होकर– 'अभू+तम्' बना। पुनः कर्त्रर्थक सार्वधातुक 'तम्' के परे रहते ही 'कर्तरि शप्' सूत्र से 'भू' धातु से परे 'शप्' प्रत्यय हुआ– 'अभू+शप्+तम्'। शप् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'अभू+अ+तम्' बना। अब 'अ' (शप्) सार्वधातुक के परे रहते इगन्त अंग 'भू' के अन्त्य वर्ण ऊकार को गुण होकर– 'अभो+अ+तम्' बना। 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अवादेश होकर– 'अभव्+अ+तम्' बना। अब वर्णसम्मेलन करके 'अभवतम्' पद सिद्ध हुआ।

6) **अभवत** – पूर्ववत् अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में अनद्यतन भूतकाल गम्यमान होने के कारण 'अनद्यतने लङ्' सूत्र द्वारा लङ् लकार हुआ– 'भू+लङ्। लङ् के अकार और ङकार की इत्संज्ञा और लोप– 'भू+ल'

बना। लकार के स्थान पर पूर्ववत् 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' से परस्मैपद के विषय में, प्रथम एवं उत्तम पुरुष के विषय से रहित होने पर 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से मध्यम पुरुष में, बहुवचन की विवक्षा में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र द्वारा 'थ' प्रत्यय का विधान किया गया। अब 'भू+थ' की स्थिति में लङ् (थ) पर रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र द्वारा 'भू' को अट् का आगम हुआ, टकार की इत्संज्ञा हुई और टित्व के कारण पूर्ववत् अट् का 'भू' के आदि में आकर – 'अभू+य' बना। अब ङित् का विषय होने से 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र द्वारा 'थ' के स्थान पर 'त' आदेश (सर्वादेश) हुआ– 'अभू+त'। कर्त्रर्थक सार्वधातुक 'त' के परे रहते 'भू' धातु से शप् प्रत्यय 'कर्तरि शप्' से हुआ, अनुबन्ध लोप होकर– 'अभू+अ+त' बना। अब सार्वधातुक 'अ' (शप्) प्रत्यय के परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र द्वारा इगन्त अंग 'भू' ऊकार को गुण होकर– 'अभो+अ+त' बना। ओकार को 'एचोऽयवायावः' से 'अव्' आदेश होकर– 'अभव्+अ+त' बना। पुनः वर्णसम्मेलन होकर 'अभवत्' क्रियापद की सिद्धि हुई।

7) अभवम् – 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र के द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में अनद्यतन भूतकाल गम्यमान होने की दशा में 'अनद्यतने लङ्' सूत्र द्वारा लङ् लकार का विधान किया गया– 'भू+लङ्'। लङ् के अनुबन्धों का लोप होकर 'भू+ल्' की स्थिति में लकार के स्थान पर 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र से परस्मैपद संज्ञक प्रत्ययों की उपस्थिति होकर उत्तम पुरुष एकवचन में 'अस्मद्युत्तमः' सूत्र द्वारा, एकवचन की विवक्षा में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से मिप् प्रत्यय हुआ– 'भू+मिप्। लङ् का विषय होने के कारण 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से 'भू' को अट् का आगम, टकार की इत्संज्ञा, टित्व के कारण आदि अवयव बनाकर– 'अभू+मिप्'। ङित् लकार के विषय में 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से 'मिप्' के स्थान पर 'अम्' सर्वादेश हुआ– 'अभू+अम्'। पुनः कर्त्रर्थक सार्वधातुक अम् के परे

रहेत 'भू' धातु से परे 'कर्तरि शप्' सूत्र द्वारा शप् हुआ– 'अभू+शप्+अम्'। शप् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'अभू+अ+अम्'। चूंकि 'अ' (शप्) सार्वधातुक है और 'भू' से परे है; अतः 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से इगन्त अंग 'भू' को गुण हुआ – 'अभो+अ+अम्'। अब पुनः 'एचोऽयवायावः' से ओकार को 'अव्' आदेश होकर– 'अभव्+अ+अम्' हुआ। पुनः 'अभव+अम्' की स्थिति में 'अतो गुणे' सूत्र से पररूप होकर 'अभवम्' रूप सिद्ध हुआ।

8) **अभवाव** – अकर्मक 'भू' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में, अनद्यतन भूतकाल गम्यमान होने की दशा में 'अनद्यतने लङ्' सूत्र द्वारा लङ् लकार का विधान होकर 'भू+लङ्' हुआ। अनुबन्ध लोप होकर 'भू+ल' बना। पुनः लङ् परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से 'भू' को अट् का आगम्, टकार की इत्संज्ञा, टित्व के कारण आदि अवयवत्व होकर– 'अभू+ल'। अब लकार के स्थान पर आत्मनेपद के निमित्त से हीन धातु के विषय में, प्रथम पुरुष एवं मध्यम पुरुष का विषय न होने पर 'अस्मद्युत्तमः' सूत्र से उत्तम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र द्वारा द्विवचन में 'वस्' प्रत्यय का विधान हुआ– 'अभू+वस्'। पुनः कर्त्रर्थक सार्वधातुक वस् के परे रहते 'कर्तरि शप्' सूत्र द्वारा 'भू' धातु से शप् प्रत्यय का विधान हुआ– 'अभू+शप्+वस्'। शप् के अनुबन्ध का लोप होकर– 'अभू+अ+वस्'। सार्वधातुक 'अ' (शप्) के परे रहते इगन्त अंग 'भू' के ऊकार को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण हुआ, ओकार को 'एचोऽयवायावः' से अवादेश होकर– 'अभव्+अ+वस्' बना। वर्णमेल होकर– 'अभव+वस्' दशा में 'अतो दीर्घो यञि' से अदन्त अंग 'अभव' के वकारोत्तवर्ती अकार को दीर्घ होकर 'अभवावस्' की स्थिति में 'नित्यं ङितः' से सकार का लोप होकर 'अभवाव' रूप की सिद्धि हुई।

9) अभवाम् – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में, अनद्यतन भूतकाल गम्यमान होने की दशा में 'अनद्यतने लङ्' सूत्र से लङ् लकार का विधान हुआ– 'भू+लङ्'। लङ् की स्थिति में 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र द्वारा 'भू' को अट् का आगम, टकार की इत्संज्ञा और लोप तथा टित्व के कारण 'आद्यन्तौ टकितौ' से 'भू' के आदि में स्थित होकर– 'अभू+लङ्'। लङ् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'अभू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' से परस्मैपद में, प्रथम पुरुष एवं मध्यम पुरुष के विषय से रहित होने के कारण 'आस्मद्युत्तमः' सूत्र द्वारा उत्तम पुरुष में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र के द्वारा बहुवचन की विवक्षा में 'मस्' प्रत्यय का विधान हुआ। अब 'अभू+मस्' बना। कर्त्रर्थक सार्वधातुक 'मस्' के परे रहते 'भू' धातु से परे 'कर्तरि शप्' द्वारा शप् प्रत्यय हुआ– 'अभू+शप्+मस्'। शप् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'अभू+अ+मस् बना। 'भू' से परे 'अ' (शप्) सार्वधातुक के होन पर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र द्वारा इगन्त अंग 'भू' के अकार को गुण हुआ– 'अभो+अ+मस्'। 'एचोऽयवायावः' सूत्र द्वारा ओकार को अवादेश– 'अभव्+अ+मस्'। एवं 'अभव+मस्' हुआ। अन्ततः यञादि सार्वधातुक मस् के पर रहते 'अतो दीर्घो यञि' सूत्र से 'अभव' के वकारोत्तवर्ती अकार को दीर्घ होकर 'अभवामस्' बना। पुनः ङित् सम्बन्धी सकार का 'नित्यं ङितः' से लोप होकर 'अभवाम' क्रियापद सिद्ध हुआ।

14.4 भू धातु के विधिलिङ् लकार की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्र

सूत्र – विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्।।3/3/161।।

वृत्ति – एष्वर्थेषु धातोर्लिङ्।

अर्थ – विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न और प्रार्थना इन अर्थों में धातु से परे लिङ् लकार होता है।

व्याख्या – 'विधि-प्रार्थनेषु' सप्तमी विभक्ति बहुवचन, 'लिङ्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'धातोः, परश्च' ये तीनों अधिकृत हैं। यहाँ पर विधि आदि छः शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या आवश्यक है।

(i) **विधि** – अपने से छोटे अर्थात् सेवक आदि को आज्ञा देना 'विधि' कहलाता है, यथा– कोई अपने सेवक से कहे– 'जलं भवान् आनयेत् (आप जल को लायें); वस्त्राणि भवान् प्रक्षालयेत् (आप वस्त्रों को धो दें) आदि।

(ii) **निमन्त्रण** – अवश्य कर्तव्य प्रेरण को निमन्त्रण कहते हैं अर्थात् ऐसी प्रेरणा जिसे यदि पालन न किया जाये, तो प्रत्यवाय (पाप) लगता हो, जैसे– श्राद्ध आदि में किसी अन्य श्रोत्रिय भोक्ता के न मिलने पर यदि कोई ब्राह्मण अपने दौहित्र (लड़की के पुत्र) को कहे कि 'इह भवान् भुञ्जीत' (आप यहाँ खायें)। तो, यदि दौहित्र ऐसे श्राद्ध भोजन के लिए इन्कार करेगा तो, स्मृतिशास्त्रानुसार उसे पाप का भागी होना पड़ेगा। महाभाष्य की टीका प्रदीपोद्योत में है – "एवं तर्हि यन्नियोगतः कर्त्तव्यं तन्निमन्त्रणम्। किं पुनस्तत्? हव्यं कव्यञ्च। यही भाव मनुस्मृति के तृतीय अध्याय (श्लोक 128-130 तक) में भी देख सकते हैं।

(iii) **आमन्त्रण** – आमन्त्रण ऐसी प्रवर्तना को कहते हैं, जिसमें कामचारिता होती है अर्थात् करना या न करना इच्छा पर निर्भर होता है। इसे करने से पुण्य दान करने से पाप नहीं होता हैं यथा – 'इहासीत भवान् (आप यहाँ बैठें)। यहाँ बैठना या न बैठना श्रोता की इच्छा पर है; इसमें कामचारिता है। बैठने में कोई पुण्य या न बैठने में कोई पाप नहीं होता।

(iv) **अधीष्ट** – किसी बड़े गुरू आदि को सत्कारपूर्वक किसी कार्य के सम्पादन की प्रेरणा देना 'अधीष्ट' कहलाता है। 'अधीष्टं नाम सत्कारपूर्वको व्यापारः'। यथा – 'पुत्रमध्यापयेद् भवान्' (आप कृपया मेरे पुत्र को पढ़ावें)।

(v) **सम्प्रश्न** – किसी बड़े के समीप किसी बात का सम्प्रधारण (विनिश्चय) करना 'सम्प्रश्न' कहा जाता है। यथा – किसी विद्वान् से पूछें – 'किं भो! वेदममधयीय उत तर्कम्? (क्या मैं वेद पढ़ूँ या तर्कशास्त्र?)। यहाँ पर सम्प्रधारणार्थ (विनिश्चयार्थ) पूछा गया है।

(vi) **प्रार्थन** – मांगने का नाम 'प्रार्थन' है। यथा – 'भोः भोजनं लभेय' (मैं भोजन पाना चाहता हूँ)।

इन अर्थों में से पहले चार (विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण और अधीष्ट) विभिन्न प्रकार की प्रवर्त्तना (प्रेरणा) ही हैं। इनका अलग-अलग उल्लेख शास्त्र के सम्पादनार्ध ही समझना चाहिए। ये अर्थ शास्त्र में वाच्य और द्योत्व दोनों प्रकार के माने गये हैं।

सूत्र – यासुट् परस्मैपदेषूदान्तो ङिच्च।।3/4/103।।

यहाँ लिङ् स्थानीय परस्मैपदों को यासुट् का आगम किया गया है। इस सूत्र की व्याख्या इकाई 13 में की गयी है।

सूत्र – लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य।।7/2/79।।

वृत्ति – सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः। इति प्राप्ते।

अर्थ – सार्वधातुक लिङ् के अन्त्य (अन्त में रहने वाले) सकार का लोप हो जाता है। इस सूत्र के प्राप्त होने पर (इसका अपवाद अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है)।

व्याख्या – 'लिङः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'स' षष्ठी विभक्ति एकवचन (लुप्तषठीकं पदम्), 'लोपः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'अनन्त्यस्य' षष्ठी विभक्ति एकवचन, 'सार्वधातुकस्य' षष्ठी विभक्ति एकवचन (रुदादिभ्यः सार्वधातुके' से विभक्तिविपरिणाम करके)। अन्तेभवोऽन्त्यः, न अन्त्योऽनन्त्यः, तस्य–अनन्त्यस्य। इस सूत्र के उदाहरण हैं शृणुयात्, स्तुयात् आदि। 'भव+यास्त्' यहाँ 'यास्त्' यह, सार्वधातुक लिङ् है। इसमें 'स्' यह अनन्त्य है। अतः प्रकृत सूत्र से इसका लोप प्राप्त होता है। इस पर अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

सूत्र – अतो येयः।। 7/2/80।।

वृत्ति – अतः परस्य सार्वधातुकावयवस्य यास् इत्यस्य इय्। गुणः।

अर्थ – अदन्त अंग से परे सार्वधातुक के अवयव यास् के स्थान पर 'इय्' आदेश हो।

व्याख्या – 'अतः' पंचमी विभक्ति एकवचन, 'अङ्गात्' पंचमी विभक्ति एकवचन ('अङ्गस्य' इस अधिकृत का पञ्चम्यन्त के रूप में विपरिणाम हो जाता है)। 'सार्वधातुकस्य' षष्ठी विभक्ति एकवचन ('रुदादिभ्यः सार्वधातुके' से विभक्ति विपरिणाम करके), 'याः' षष्ठी विभक्ति एकवचन ('यास्' यहाँ षष्ठी का लुक् होकर सकार को रुत्व, रेफ को 'य्' आदेश तथा 'लोपः शाकल्यस्य' से 'य्' का लोप हो जाता है। या+इयः = येयः, यहाँ सन्धि में आर्ष प्रयोग है)। 'इयः' प्रथमा विभक्ति एकवचन यदाकारादकार उच्चारणार्थः। यहाँ 'यास्' के स्थान पर 'इय्' आदेश होता है। 'इय्' के यकार की विधान सामर्थ्य से इत्संज्ञा नहीं होती है, यथा 'भव+यास् त्' यहाँ अदन्त अंग है 'भव', इससे परे सार्वधातुक है 'यास्त्'। अतः इसके अवयव 'यास्' को 'अतो येयः' सूत्र से 'इय्' आदेश होकर गुण एकादेश होकर 'भवेय् त्' हुआ। अब यकार का लोप करने के लिए अग्रिम सूत्र प्रवृत्त होता है।

सूत्र – लोपो व्योर्वलि।। 6.1.66।।

वृत्ति – भवेत्। भवेताम्।

अर्थ – वल् (प्रत्याहार) परे होने पर वकार यकार का लोप हो।

व्याख्या – 'लोपः' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'व्योः' षष्ठी विभक्ति द्विवचन, 'वलि' सप्तमी विभक्ति एकवचन। अब अर्थ हुआ– (वलि) वल् (य् का छोड़कर समस्त व्यंजन) परे होने पर व् और य् का (लोपः) लोप हो जाता है। यकार लोप का उदाहरण– 'भवेय् त्' यहाँ पर तकार वल् परे है; अतः यकार (य्) का लोप होकर 'भवेत्' रूप सिद्ध होता है। पुनः वकार (व्) लोप का उदाहरण – जीव्+ दानु जीरदानुः ('जीवेरदानुः'– देखें महामाष्य में 'हयवरट्' सूत्र)। यदि 'वल्' परे न कहते तो 'जीव्यात् जीव्यास्ताम्, जीव्यासुः' आदि में यकार (य्) परे होने पर भी लोप हो जाता।

सूत्र – **झेर्जुस्।।3/4/108।।**

वृत्ति – लिङो झेर्जुस् स्यात्। भवेयुः। भवेः। भवेतम्। भवेत। भवेयम्। भवेव। भवेम्।

अर्थ – लिङ् के झि के स्थान पर जुस् आदेश हो।

व्याख्या – इस सूत्र की व्याख्या इकाई 13 में आशीर्लिङ् के प्रसंग में की गई है।

नोट – शेष प्रक्रियागत सूत्र ('लः कर्मणि' से लेकर 'शेषे प्रथमः' तक) पूर्व की इकाई 11 में विस्तार से उल्लिखित हैं। छात्र इन्हें वही देखें। प्रक्रिया-सिद्धि के क्रम में सभी सूत्र तथा स्थान स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट होंगे।

14.5 भू धातु के विधिलिङ् लकार के रूपों की सिद्धि प्रकिया

1) भवेत् – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से कर्तृत्व की विवक्षा में 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न और प्रार्थन अर्थों के

द्योतित होने पर 'विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' सूत्र द्वारा लिङ् लकार का विधान किया गया— 'भू+लिङ्'। अनुबन्धों का लोप होकर— 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर आत्मनेपद के निमित्त से हीन धातु से 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद में, उत्तम पुरुष एवं मध्यम पुरुष के विषय से विरक्त होने के कारण 'शेषे प्रथमः' सूत्र से प्रथम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' से एकवचन की विवक्षा में तिप् प्रत्यय का विधान हुआ— 'भू+तिप्'। तिप् के पकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा एवं 'तस्य लोपः' से लोप होकर 'भू+ति' बना। 'ति' की सार्वधातुक संज्ञा होने के कारण 'भू' से परे कर्त्ता अर्थ के सार्वधातुक 'ति' के कारण 'कर्तरि शप्' से शप् हुआ एवं शप् के शकार की 'लशक्वतद्धिते' एवं पकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' सूत्र से लोप— 'भू+अ+ति'। पुनः 'भू' से परे लिङ् लकार सम्बन्धी 'ति' को 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र से यासुट् का आगम, टकार की 'हलन्त्यम्' से एवं उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होकर, प्रत्यय के टित्व के कारण 'ति' का आदि अवयव बना और 'भू+अ+यास्+ति' हुआ। 'भू' के बाद सार्वधातुक 'अ' (शप्) रहने के कारण 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग 'भू' के उकार को गुण होकर— 'भो+अ+यास्+ति' बना। पुनः 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अवादेश होकर— 'भव्+अ+यास्+ति' > 'भव+यास्+ त' बना। अब ह्रस्व अकार से परे सार्वधातुक के अवयव यास् के स्थान पर 'अतो येयः' सूत्र द्वारा 'इय्' आदेश हुआ— 'भव+इय्+ति'। 'आद्गुणः' से गुण होकर— 'भवेय्+ति' बना। पुनः 'लोपो व्योर्वलि' सूत्र से यकार का लोप होकर— 'भवेति' बना। अन्ततः 'ति' के इकार का 'इतश्च' सूत्र से लोप होकर — 'भवेत्' रूप सिद्ध हुआ।

2) भवेताम् – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में, विध्यादि अर्थों के गम्यमान होने के कारण 'विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' सूत्र द्वारा लिङ् लकार का विधान होकर– 'भू+लिङ्' बना। लिङ् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' से परस्मैपद में, 'शेषे प्रथमः' से प्रथम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' से द्विवचन की विवक्षा में 'तस्' प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+तस्'। ङित् का विषय होने के कारण 'तस्' के स्थान पर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' से सूत्र से 'ताम्' सर्वादेश हुआ– भू+ताम्। पुनः 'ताम्' सार्वधातुक के परे रहते 'कर्तरि शप्' से भू से परे शप् प्रत्यय हुआ और शप् के अनुबन्धों को लोप होकर– 'भू+अ+ताम्' बना। अब लिङ् लकार सम्बन्धी 'ताम्' को 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र से यासुट् आगम, अनुबन्ध लोप और टित्व के कारण आदि अवयवत्व होकर– 'भू+अ+यास्+ताम्'। अब सार्वधातुक 'अ' (शप्) के परे रहते इगन्त अंग 'भू' के अकार को गुण, 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अव् आदेश होकर– 'भव्+अ+यास्+ताम्' > भव+यास्+ताम्' बना। अब 'अतो येयः' से 'यास्' के स्थान पर 'इय्' आदेश–'भव+इय्+ताम्'। 'भवेय्+ताम्' ('आद्गुणः' से गुण होकर) की स्थिति में वल् प्रत्याहार ताम् के तकार के परे रहते 'लोपो व्योर्वलि' से यकार का लोप होकर 'भवेताम्' रूप की सिद्धि हुई।

3) भवेयुः – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में, विध्यादि अर्थों के गम्यमान होने के कारण 'विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' सूत्र द्वारा लिङ् लकार का विधान होकर– 'भू+लिङ्' बना। लिङ् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद, प्रथम पुरुष बहुवचन में 'बहुषु बहुवचनम्' से 'झि' प्रत्यय हुआ– 'भू झि'। अब यहाँ 'झि' चूँकि लिङ् लकार का है;

अतः 'झेर्जुस्' सूत्र से 'झि' के स्थान 'जुस्' सर्वादेश हुआ– 'भू+जुस्'। जुस् के जकार की 'चुटू' सूत्र से इत्संज्ञा होकर 'तस्य लोपः' से लोप– 'भू+उस्'। उस् की सार्वधातुक संज्ञा होने के कारण 'कर्तरि शप्' से शप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप होकर– 'भू+अ+उस्' बना। अब 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र से 'उस्' को यासुट् आगम, अनुबन्ध लोप और टित्व के कारण आदि अवयवत्व होकर– 'भू+अ+यास्+उस्' हुआ। सार्वधातुक प्रत्यय 'अ' (शप्) परे रहते इगन्त अंग 'भू' के ऊकार को गुण ओकार, 'एचोऽयवायावः' से अवादेश होकर 'भू+अ+यास्+उस्' > भो+अ+यास्+उस्' > 'भव्+अ+यास्+उस्' > 'भव+यास्+उस्' हुआ। अब 'अतो येयः' से यास् को इय् सर्वादेश होकर– 'भव+इय्+उस्' बना। 'आद्गुणः' से गुण एकादेश होकर– 'भवेय्+उस्' बना। पुनः वर्णसम्मेलन होकर– 'भवेयुस्' बना। अब 'भवेयुस्' के सकार को रुत्व और विसर्ग होकर 'भवेयुः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

4) भवेः – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में, विध्यादि अर्थों के गम्यमान होने के कारण 'विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' सूत्र द्वारा लिङ् लकार का विधान होकर– 'भू+लिङ्' बना। लिङ् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' एवं 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से मध्यम पुरुष के एकवचन की विवक्षा में 'द्वयेकयोकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र द्वारा 'सिप्' प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+सिप्'। सिप् के अनुबन्धों की इत्संज्ञा और लोप होकर– 'भू+सि' की दशा में 'सि' सार्वधातुक के परे रहते 'कर्तरि शप्' सूत्र से 'भू' धातु से परे 'शप्' प्रत्यय का विधान हुआ; शप् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'भू+अ सि' बना। अब लिङ् लकार सम्बन्धी 'सि' के परे रहते रहते 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' से यासुट् आगम, टकार अनुबन्ध का लोप, टित्व के कारण 'सि' का

आदि अवयव होकर – 'भू+अ+यास्+सि' बना। ऐसी स्थिति में सार्वधातुक 'अ' के परे रहते इगन्त अंग 'भू' के अकार को 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से गुण होकर, 'एचोऽयवायावः' सूत्र से अवादेश होकर– 'भव्+अ+यास्+सि' बना। अब 'भव+यास्+सि' की स्थिति में 'अतो येयः' से यास् के स्थान पर 'इय्' आदेश होकर– 'भव्+इय्+सि' हुआ; 'आदगुणः' से गुण एकादेश होकर– 'भवेय्+सि' हुआ। अब 'भवेय्+सि' की दशा में 'लोपो व्योर्वलि' से यकार का लोप होकर–'भवेसि' रूप बना। पुनः 'इतश्च' से इकार का लोप होकर एवं सकार को रुत्व विसर्ग होकर 'भवेः' रूप सिद्ध हुआ।

5) **भवेतम्** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में, विध्यादि अर्थों के गम्यमान होने के कारण 'विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' सूत्र द्वारा लिङ् लकार का विधान होकर– 'भू+लिङ्' बना। लिङ् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद में, 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' से मध्यम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनेकवचने' से द्विवचन में 'थस्' प्रत्यय हुआ– 'भू+थस्'। थस् के स्थान पर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' से 'तम्' सर्वादेश हुआ– 'भू+तम्'। पुनः 'तम्' सार्वधातुक के परे रहते 'कर्तरि शप्' से भू से परे शप् प्रत्यय हुआ और शप् के अनुबन्धों को लोप होकर– 'भू+अ+तम्' बना। अब लिङ् लकार सम्बन्धी 'ताम्' को 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र से यासुट् आगम, अनुबन्ध लोप और टित्व के कारण आदि अवयवत्व होकर– 'भू+अ+यास्+तम्'। अब सार्वधातुक 'अ' (शप्) के परे रहते इगन्त अंग 'भू' के अकार को गुण, 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अव् आदेश होकर– 'भव्+अ+यास्+तम्' **>** भव+यास्+तम्' बना। अब 'अतो येयः' से 'यास्' के स्थान पर 'इय्' आदेश–'भव+इय्+तम्'। 'भवेय्+तम्' ('आद्गुणः' से गुण होकर) की स्थिति में वल्

प्रत्याहार तम् के तकार के परे रहते 'लोपो व्योर्वलि' से यकार का लोप होकर 'भवेतम्' रूप की सिद्धि हुई।

6) **भवेत** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में, विध्यादि अर्थों के गम्यमान होने के कारण 'विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' सूत्र द्वारा लिङ् लकार का विधान होकर– 'भू+लिङ्' बना। लिङ् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'भू+ल्' बना। इस दशा में लकार का स्थान पर 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र से परस्मैपद में 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र द्वारा मध्यम पुरुष में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र से बहुवचन की विवक्षा में 'थ' प्रत्यय का विधाना हुआ– 'भू+थ'। अब 'थ' के स्थान पर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से 'त' आदेश हुआ– 'भू+त'। 'त' के सार्वधातुक होने के कारण एवं कर्त्रर्थक होने के कारण 'कर्तरि शप्' से भू धातु को शप् प्रत्यय हुआ, अनुबन्ध लोप होकर– 'भू+अ त' बना। पुनः सार्वधातुक परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से इगन्त अंग 'भू' को गुण होकर एवं ओकार को 'एचोऽयवायावः' से अवादेश होकर– 'भव्+अ+त' हुआ। अब 'भव+त' की स्थिति में 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र द्वारा 'त' की यासुट् का आगम, टकार एवं उकार अनुबन्ध का लोप, यास् की टित्व के कारण आदि स्थिति होकर– 'भव+यास्+त' बना। पुनः 'अतो येयः' से यास् के स्थान पर इय् सर्वादेश होकर 'भव+इय्+त' बना। 'आद्गुणः' से गुण एकादेश एवं 'लोपो व्योर्वलि' से यकार का लोप होकर 'भवेत' रूप सिद्ध हुआ।

7) **भवेयम्** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में, विध्यादि अर्थों के गम्यमान होने के कारण 'विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' सूत्र द्वारा लिङ् लकार का विधान होकर– 'भू+लिङ्' बना। लिङ् के अनुबन्धों का लोप

होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकर के स्थान पर पूर्ववत् ही परस्मैपद में, 'अस्मद्युत्तमः' से उत्तम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनेकवचने' सूत्र से एकवचन की विवक्षा में 'मिप्' प्रत्यय हुआ– 'भू+मिप्'। मिप् के स्थान पर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र द्वारा 'अम्' का सर्वादेश हुआ– 'भू+अम्'। कर्त्रर्थक सार्वधातुक अम् के परे होने पर 'कर्तरि शप्' से शप् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, इगन्त अंग को गुण, अवादेश आदि कार्य होकर– 'भव्+अ+अम्' हुआ। पुनः 'भव+अम्' की स्थिति में 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र से अम् को यासुट् का आगम, अनुबन्धों का लोप एवं टित्व के कारण आदि में स्थिति होकर– 'भव+यास्+अम्' हुआ। अब 'अतो येयः' सूत्र द्वारा 'यास्' के स्थान पर 'इय्' सर्वादेश होकर– 'भव+इय्+अम्' बना और 'आद्गुणः' से गुण एकादेश होकर– 'भवेय्+अम्' > 'भवेयम्' पद बना।

8) **भवेव** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में, विध्यादि अर्थों के गम्यमान होने के कारण 'विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' सूत्र द्वारा लिङ् लकार का विधान होकर– 'भू+लिङ्' बना। लिङ् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद पदान्वित नौ प्रत्ययों में से 'अस्मद्युत्तमः' सूत्र द्वारा विहित उत्तम पुरुष विषयक द्विवचन का प्रत्यय 'वस्' हुआ– 'भू+वस्'। भू से परे वस् के कर्त्रर्थक सार्वधातुक होने के कारण 'कर्तरि शप्' से शप् प्रत्यय का विधान किया गया– 'भू+शप्+वस्'। शप् के अनुबन्धों का लोप होकर 'भू+अ+वस्' हुआ। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग 'भू' के अकार को गुण, 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अवादेश होकर 'भू+अ+वस्' > 'भो+अ+वस्' > 'भव्+अ+वस्' > 'भव+वस्' हुआ। अब परस्मैपद संज्ञक वस् के परे रहते वस् को 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र द्वारा यासुट् का आगम हुआ, अनुबन्धों का लोप हुआ और टित्व

के कारण 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र से 'यास्' 'वस्' के आदि में आया– 'भव+यास्+वस्'। अब 'अतो येयः' से यास् को इय् सर्वादेश– 'भव+इय्+वस्'। 'आद्गुणः' सूत्र से गुण एकादेश होकर– 'भवेय्+वस्' बना। पुनः 'लोपो व्योर्वलि' सूत्र से 'भवेय्' के यकार का लोप होकर– 'भवेवस्' बना और अब सकार का ङित् विषयक होने के कारण 'नित्यं ङितः' सूत्र से लोप होकर 'भवेव' रूप बना।

9) **भवेम** – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र से कर्तृत्व की विवक्षा में, विध्यादि अर्थों के गम्यमान होने के कारण 'विधिनिमन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' सूत्र द्वारा लिङ् लकार का विधान होकर– 'भू+लिङ्' बना। लिङ् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् आत्मनेपद के निमित्त से रहित धातु से 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद में, 'अस्मद्युत्तमः' सूत्र से उत्तम पुरुष में, 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र द्वारा बहुवचन की विवक्षा में 'मस्' प्रत्यय हुआ– 'भू+मस्। अब 'कर्तरि शप्' सूत्र द्वारा 'भू' को शप् प्रत्यय– 'भू+शप्+मस्'। शप् के अनुबन्धों का लोप होकर 'भू+अ+मस्' बना। सार्वधातुक प्रत्यय 'अ' (शप्) के परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग 'भू' के अकार को गुण होकर– 'भो+अ+मस्' एवं 'एचोऽयवायावः' सूत्र से ओकार को अव् आदेश होकर 'भव्+अ+मस्' > 'भव+मस्' बना। पुनः 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' सूत्र से मस् को यासुट् का आगम, अनुबन्धों का लोप एवं टित्व के कारण मस् के आदि में स्थिति– 'भव+यास्+मस्' हुआ। अब 'अतो येयः' से यास् को इय् सर्वादेश होकर 'भव+इय्+मस्' बना। 'आद्गुणः' से गुण एकादेश होकर 'भवेय्+मस्' बना। पुनः 'लोपो व्योर्वलि' सूत्र से भवेय् के यकार का लोप होकर– 'भवेमस्' हुआ और अन्ततः ङित् सम्बन्धी भवेमस् के सकार का 'नित्यं ङितः' सूत्र से लोप होकर 'भवेम' क्रिया पद की सिद्धि हुई।

14.6 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! MSK-002 'संस्कृत व्याकरण' के पाठ्यक्रम के इस खण्ड की 11वीं, 12वीं एवं 13वीं इकाई के माध्यम से आपने भू धातु के लट्, लिट्, लुट्, लृट् आशीर्लिङ्ग एवं लोट् लकार के रूपों की सिद्धि में प्रयुक्त सूत्रों की व्याख्या एवं रूप सिद्धि प्रक्रिया का अध्ययन किया। इस इकाई में आपने भू धातु के लङ् एवं विधिलिङ् लकार से सम्बन्धित सूत्रों एवं रूपों की सिद्धि प्रक्रिया का अध्ययन किया। आपने विधि आदि छः अर्थों को विस्तार के साथ जाना। अनद्यतन लङ् की प्रक्रिया में होने वाले अट् आगम की प्रक्रिया को भी आपने समझा। आपने 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः', लोपो व्योर्वलि', 'एचोऽयवायावः', 'अतो येयः' आदि सूत्रों से होने वाले आदेशों के विषय में अध्ययन किया। इसके साथ ही आपने लङ् एवं विधिलिङ् लकार की रूपसिद्धि की प्रक्रिया को सविस्तार समझा।

14.7 कुछ अपयोगी पुस्तकें

1. वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी, गोरखपुर, गीताप्रेस।
2. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या गोविन्दाचार्य, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती।
3. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, धरानन्द, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास।
4. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, भीमसेन, लघुसिद्धान्तकौमुदी, (भाग–1–6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन।
5. शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय, (भाग–1–3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

14.8 अभ्यास प्रश्न

(i) 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र की व्याख्या कीजिए।

(ii) 'भवेत्' रूप की सिद्धि कीजिए।

(ii) 'अतो येयः' सूत्र की व्याख्या कीजिए।

(iv) 'अभवन्' पद की सूत्रोल्लेखपूर्वक सिद्धि कीजिए।

(v) 'अभवाव' पद की सूत्रोल्लेखपूर्वक सिद्धि कीजिए।

(vi) 'भवेयुः' पद की सिद्धि कीजिए।

इकाई 15 भू धातु (परस्मैपद) लुङ् और लृङ् लकार

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- भू धातु परस्मैपद लुङ् लकार की रूप-सिद्धि-प्रक्रिया से परिचित होंगे।
- भू धातु परस्मैपद लुङ् लकार के 'अभूत' से लेकर 'अभूम' तक की सिद्धि का ज्ञान कर सकेंगे।
- लुङ् लकार की सिद्धि में प्रयुक्त सूत्रों का ज्ञान कर सकेंगे।
- लङ् लकार के 'अभविष्यत्' से लेकर 'अभविष्याम्' तक की सिद्धि प्रक्रिया का ज्ञान कर सकेंगे।
- 'च्लि' के स्थान पर 'सिच्' के आदेश को जान सकेंगे।
- लृङ् लकार में 'अट्' आगम का विधान जान सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

इस इकाई के विधिपूर्वक अध्ययन से आप लुङ् और लृङ् लकार (भू धातु) के रूपों, उनकी सिद्धि में प्रयुक्त सूत्रों से परिचित होंगे। यहाँ महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह है कि लुङ् लकार का प्रयोग सामान्य भूतकाल को द्योतित करने के लिए होता है और विद्यार्थियों को सामान्य बोलचाल में लुङ् का ही प्रयोग करना चाहिए। इस इकाई में 'लुङ् और 'च्लि लुङि' जैसे उन्हीं सूत्रों की व्याख्या की गयी है जो पूर्व इकाइयों में नहीं आये है। शेष सूत्र केवल सिद्धि-प्रक्रिया में ही यथास्थान दिये जायेंगे। व्याख्या खण्ड में उनकी पुनरावृति नही होगी। इस इकाई में 'शप्' के स्थान पर 'च्लि' प्रत्यय का विधान है। पुनः 'च्लि लुङि' और 'च्लेः सिच्' इन दोनों सूत्रों को पढ़ने का प्रयोजन बाध्य-बाध्क भाव को चरितार्थ करने हेतु पड़ा गया है; अन्यथा सीधे 'सिच लुङि' कहने पर यहाँ तो कार्य चल भी जाता किन्तु अन्य स्थलों पर समस्या उत्पन्न होती है। यहाँ भी अकारादि क्रम का ध्यान देते हुए पहले उकारान्त 'लुङ्' एवं बाद में ऋकारान्त 'लृङ्' को रखा गया है।

15.2 भू धातु के लुङ् लकार की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्र

सूत्र – लुङ्।।3/2/110।।

वृत्ति – भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात्।

अर्थ – भूतकाल (सामान्य भूत) में धातु से लुङ् हो।

व्याख्या – 'लुङ्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'भूते, धातोः, प्रत्ययः, परश्च' इन चार अधिकारों का यहाँ अनुवर्त्तन होता है। पीछे अनद्यतन भूत में 'लङ्' तथा अनद्यतन भूत परोक्ष में 'लिट्' का विधान कर चुके हैं; अतः उन दोनों अपवादों के विषय को छोड़कर भूतसामान्य में लुङ् का प्रयोग समझना चाहिए।

सूत्र – माङि लुङ्।।3/3/175।।

वृत्ति – सर्वलकारापवादः।

अर्थ – माङ् शब्द के उपपद रहते धातु से लुङ् लकार हो। यह सभी लकारों का अपवाद है।

व्याख्या – 'माङि' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'लुङ्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'धातोः, प्रत्यय' ये तीनों पूर्वतः अधिकृत हैं। माङ् के योग में लुङ् की स्थिति में धातु को अट् का आगम या आट् का आगम नहीं होता है। यथा– 'मा भवान कार्षीत' (आप मत करें, आपने नहीं किया, आप नहीं करोगे आदि)। महाभाष्य में भी आया है– 'शब्दं मा कार्षीः'। यह सभी लकारों का अपवाद है। अतः वर्तमान, भूत, भविष्यत् तथा विध्यादियों में भी माङ् के योग में लुङ् का ही प्रयोग होगा इसलिए 'मा भवान कार्षी' का 'आप मत करें' यही अर्थ नहीं होता अपितु 'आप नहीं करोगे' आदि अन्य अर्थ भी होंगे।

कई स्थानों पर 'मा' के योग में लोट्, विधिलिङ् या लृट् का भी प्रयोग देखा जाता है। यथा–'मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि' (गीता– 2/47), 'मा च बुद्धिमधर्मे त्वं कुर्या राजन्! कथञ्चन' (रामायण उत्तर. 40/10),' 'मा विनाशं गमिष्याम' (रामायण, उत्तर. 35/63) आदि। यह बहुत ही विचारणीय सूत्र है।

सूत्र – च्लि लुङि।।3/1/43।।

वृत्ति – शबाद्यपवादः।

अर्थ – लुङ् परे होने पर धातु से परे 'च्लि' प्रत्यय हो। यह सूत्र 'शप्' आदि विकरणों (प्रत्ययों) का अपवाद है।

व्याख्या – 'च्लि' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'लुङि' चतुर्थी विभक्ति एकवचन, 'धातोः' पंचमी विभक्ति एकवचन ('धातोरेकाचो' से), प्रत्ययः, परश्च' ये दोनों अधिकृत हैं। 'च्लि' का इकार उच्चारणार्थक है, चकार की 'चुटू' सूत्र से इत्संज्ञा हो जाती है। तो, अर्थ हुआ– 'लुङ् लकार परे होने पर धातु से परे 'च्लि' प्रत्यय हो। अब आगम सूत्र द्वारा 'च्लि' के स्थान पर 'सिच्' आदेश का विधान किया जा रहा है।

सूत्र – गतिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदषु।।2/4/77।।

वृत्ति – एभ्यः सिचो लुक् स्यात्। गापाविहेणादेशपिबती गृह्येते।

अर्थ – परस्मैपद प्रत्यय परे हो तो, गा स्था, पा और भू धातुओं से परे सिच् का लुक् हो। 'गाया.' इस सूत्र में 'गा' से इण् धातु के स्थान पर आदेश होने वाले 'गा' का तथा 'पा' से 'पा पाने' (परस्मै. भ्वा.) धातु का ग्रहण होता है, अन्य का नहीं।

व्याख्या – 'गा' यह रूप दो धातुओं का बनता है। एक तो 'गै' शब्दे धातु (भ्वा. परस्मैपद) का। इसे 'अदिच उपदेशेऽशिति' सूत्र से ऐ का आकारादेश होकर 'गा' बनता है। दूसरा इण् गतौ (अदा. परस्मै.) धातु के स्थान पर 'इणो गा लुङि' सूत्र से 'गा' आदेश होकर बनता है। परन्तु यहाँ पर इण् के स्थान पर आदेश होने वाल 'गा' का ही ग्रहण अभीष्ट है। इसी प्रकार 'पा' धातु भी दो हैं। एक 'पा पाने' धातु से (श्वा. परस्मै.) और दूसरी 'पा रक्षणे' (अदा. परस्मै.) धातु। यहाँ पहली 'पा पाने' धातु का ग्रहण अभीष्ट है। महाभाष्य में भी कहा है– 'गापोग्रहिणे इण्पिबत्योर्ग्रहणम्'। इस सूत्र के उहाहरण हैं –

(क) 'गा' (इण् गतौ) – अगात्, अगाताम्, अगुः आदि।

(ख) 'स्था' (ष्ठा गाति निवृत्तौ –ठहरना) – अस्थात्, अस्थाताम्, अस्थुः आदि।

(ग) 'घु' ('दाधाध्वदाप्' सूत्र से 'दा' और 'धा' रूप वाली धातुओं की 'घु' संज्ञा होती है। 'दा' से अदात्, अदाताम्, अदुः एवं 'धा' से अधात्, अधाताम्, अधुः आदि।)

(घ) 'पा' (पाने) – अपात्, अपाताम्, अपुः आदि।

(ङ) भू (भू सत्तायाम्) – अभूत्, अभूताम्, अभूवन् आदि।

ध्यान देने की बात यह है कि सिच् का यह लुक् परस्मैपदों में ही होता है, आत्मनेपदों में नहीं।

सूत्र – भूसुवोस्तिङि।।7/3/88।।

वृत्ति – भू सू एतयोः सार्वधातुक तिङि पर गुणो न।

अभूत्। अभूताम्। अभूवन्। अभूः। अभूतम्। अभूत। अभूवम्। अभूव। अभूम।

अर्थ – सार्वधातुक तिङ् परे होने पर भू और सू को गुण नहीं हो।

व्याख्या – 'भू-सुवोः' षष्ठी विभक्ति द्विवचन, 'तिङि' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'सार्वधातुके' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'न' इत्यत्ययपदम्, 'गुणः' प्रथमा विभक्ति एकवचन। 'सू' से यहाँ 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' इस अदादिगणीय धातु का ही ग्रहण सम्भव है क्योंकि तुदादिगणीय और दिवादिगणीय 'सू' से परे तो कभी सार्वधातुक तिङ् आता ही नहीं, बीच में सर्वत्र विकरण आ जाता है अथवा उनमें विकरण के ङिद्वत् होने से ही गुण का अभाव सिद्ध है। अतः वहाँ इस सूत्र की कहीं आवश्यकता ही नहीं है। 'सू' धातु के उदाहरण हैं– सुवै, सुवावहै, सुवामहै आदि।

15.3 भू धातु के लुङ् लकार के रूपों की सिद्धि प्रक्रिया

1) अभूत् – अकर्मक 'भू सत्तायाम्' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में भूतसामान्य अर्थ के द्योतित होने पर 'लुङ्' सूत्र से लुङ् लकार का विधान हुआ– 'भू+लुङ्'। ङकार की 'हलन्त्यम्' से तथा उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से इत्संज्ञा

ओर 'तस्य लोपः' से लोप होकर– 'भू+ल्' बना। लकार के स्थान पर पूर्ववत् 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र के द्वारा परस्मैपद में, मध्यम पुरुष एवं उत्तम पुरुष के विषयों से रहित होने के कारण 'शेषे प्रथमः' से प्रथम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र के द्वारा प्रथम पुरुष एकवचन का 'तिप्' प्रत्यय विहित हुआ– 'भू+तिप्'। पकार अनुबन्ध का लोप होकर– 'भू+ति' बना। अब चूंकि 'ति' लुङ् विषयक है; अतः 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से अंग 'भू' को अट् का आगम हुआ – 'अट्' के टकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और लोप होकर, टित्व के कारण 'भू' के आदि में जुड़कर– 'अभू+ति' बना। पुनः 'ति' की सार्वधातुक संज्ञा होने से 'कर्तरि शप्' से शप् की प्राप्ति किन्तु उसका बाधकर 'च्लि लुङि' से 'च्लि' प्रत्यय की प्राप्ति हुई– अभू+च्लि+ति'। 'च्लि' के आदि चकार की 'चुटू' से इत्संज्ञा और लोप होकर– 'अभू+लि+ति' बना। अब 'लि' के स्थान पर 'च्लेः सिच्' सूत्र द्वारा 'च्लि' के स्थान पर 'सिच्' आदेश होकर 'अभू+सिच्+ति' बना। सिच् के सकार का 'गतिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदषु' सूत्र से लोप होकर– 'अभू+ति' बना। 'ति' सार्वधातुक के परे रहने पर इगन्त अंग 'भू' के अकार के स्थान पर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण प्राप्त था किन्तु 'भूसुवोस्तिङि' से उसका निषेध होकर– 'अभू+ति' में 'ति' के इकार का 'इतश्च' से लोप होकर 'अभूत'रूप सिद्ध हुआ।

2) **अभूताम्** – अकर्मक 'भू सत्तायाम्' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में भूतसामान्य अर्थ के द्योतित होने पर 'लुङ्' सूत्र से लुङ् लकार का विधान हुआ– 'भू+लुङ्'। ङकार की 'हलन्त्यम्' से तथा उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से इत्संज्ञा ओर 'तस्य लोपः' से लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' से परस्मैपद के स्थल में, 'शेषे प्रथमः' सूत्र से प्रथम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से द्विवचन की विवक्षा में 'तस्' प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+तस्'। अब लुङ् का विषय होने के कारण 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र से 'भू' को अट् आगम, टकार

अनुबन्ध का लोप और प्रत्यय के टित्व के कारण 'आद्यन्तौ टकितौ' सूत्र से भू के आदि में स्थित होकर– 'अभू+तस्' बना। पुनः ङित् लकार सम्बन्धी 'तस्' के स्थान पर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र द्वारा 'ताम्' का सर्वादेश हुआ– 'अभू+ताम्'। अब 'ताम्' सार्वधातुक के परे रहते लुङ् की स्थिति में शप् के स्थान पर 'च्लि लुङि' से 'च्लि' प्रत्यय हुआ– 'अभू+च्लि+ताम्' बना। 'च्लि' के चकार की 'चुटू' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होकर– 'अभू+लि+ताम्' बना। अब यहाँ 'च्लेः सिच्' के स्थान पर सिच् आदेश, अनुबन्ध लोप होकर– 'अभू+स्+ताम्' बना। सिच् के सकार का 'गतिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदषु' से लोप होकर– 'अभू+ताम्' बना। पुनः वर्णसम्मेलन होकर – 'अभूताम्' क्रियापद की सिद्धि होती है।

3) **अभूवन्** – अकर्मक 'भू सत्तायाम्' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में भूतसामान्य अर्थ के द्योतित होने पर 'लुङ्' सूत्र से लुङ् लकार का विधान हुआ– 'भू+लुङ्'। ङकार की 'हलन्त्यम्' से तथा उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से इत्संज्ञा ओर 'तस्य लोपः' से लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' एवं 'शेषे प्रथमः' सूत्रों की सहायता से परस्मैपद, प्रथम पुरुष बहुवचन की विवक्षा में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र के माध्यम से बहुवचन संज्ञक 'झि' प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+झि'। पुनः 'लुङ्' सम्बन्धी 'झि' के परे होने पर 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र से 'भू' को अट् का आगम होकर, अनुबन्ध लोप होकर एवं टित्व के कारण 'भू' का आदि अवयव बनकर– 'अभू+झि' बना। अब 'झोऽन्तः' से झकार के स्थान पर अन्त् आदेश होकर– 'अभू+अन्त्+इ+झ **>** 'अभू+अन्ति हुआ। पुनः लुङ् विषयक अच् ('अन्त्' का 'अ') परे होने से 'भुवो वुग् लुङ्लिटोः' सूत्र से 'भू' को वुक् आगम, अनुबन्ध लोप, प्रत्यय के कित् होने के कारण 'आद्यन्तौ टकितौ' से भू के बाद में स्थित होकर– 'अभू+व्+अन्ति' बना। पुनः कर्त्रर्थक

सार्वधातुक 'अन्ति' के परे रहते 'कर्तरि शप्' से प्राप्त शप् का बाध करके 'च्लि लुङि् से च्लि हुआ– अभूव्+च्लि+अन्ति'। अनुबन्धलोप और 'च्लि' के स्थान पर 'च्लेः सिच्' से सिच्, सिच् के अनुबन्धों का लोप– 'अभूव+स्+अन्ति'। अब 'गतिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदषु' सूत्र से सिच् के सकार को लोप होकर– 'अभूव्+अन्ति' बना। पुनः वर्णसम्मेलन होकर– 'अभूवन्ति' हुआ। 'इतश्च' सूत्र से इकार का लोप होकर– 'अभूवन्त्' बना। 'न्त्' की 'हलोऽनन्तराः संयोगः' से संयोग संज्ञा हुई और 'संयोगान्तस्य लोपः' सूत्र के द्वारा संयोगान्त पद 'अभूवन्त्' के अन्तिम वर्ण तकार का अलोऽन्त्य परिभाषा से लोप होकर 'अभूवन् पद सिद्ध हुआ।

4) अभूः – अकर्मक 'भू सत्तायाम्' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में भूतसामान्य अर्थ के द्योतित होने पर 'लुङ्' सूत्र से लुङ् लकार का विधान हुआ– 'भू+लुङ्'। ङकार की 'हलन्त्यम्' से तथा उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से इत्संज्ञा ओर 'तस्य लोपः' से लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद में 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से मध्यम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से एकवचन में सिप् प्रत्यय हुआ– 'भू+सिप्'। पकार अनुबन्ध का लोप होकर– 'भू+सि' हुआ। लुङ् विषयक 'सि' के परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र द्वारा 'भू' को अट् का आगम, टकार अनुबन्ध का लोप और टित्व के कारण आदि में स्थित होकर– 'अभू+सि' बना। पुनः कर्त्रर्थक सार्वधातुक 'सि' के परे रहते 'कर्तरि शप्' सूत्र से प्राप्त शप् विकरण का बाध करके 'च्लि लुङि' से 'च्लि' हुआ, चकार अनुबन्ध का लोप होकर– 'अभू+लि+सि' बना। 'च्लेः सिच्' से 'च्लि' को सिच् आदेश, अनुबन्ध लोप– 'अभू+स्+सि' हुआ। अब 'गतिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदषु' सूत्र द्वारा सकार (सिच्) को लोप होकर– 'अभूसि' बना। पुनः 'इतश्च' सूत्र से सकारोत्तरवर्ती इकार का लोप होकर एवं सकार को रुत्व, विसर्ग होकर 'अभूः' प्रयोग सिद्ध हुआ।

5) अभूतम् – अकर्मक 'भू सत्तायाम्' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में भूतसामान्य अर्थ के द्योतित होने पर 'लुङ्' सूत्र से लुङ् लकार का विधान हुआ– 'भू+लुङ्'। ङकार की 'हलन्त्यम्' से तथा उकार की 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' सूत्र से इत्संज्ञा ओर 'तस्य लोपः' से लोप होकर– 'भू+ल्' की दशा में 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद, 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से मध्यम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से द्विवचन में 'थस्' प्रत्यय हुआ– 'भू+थस्'। अब पूर्ववत् 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से भू को अट् का आगम, अनुबन्ध लोप, टित्व के अधिकार में आदि स्थिति होकर– 'अभू+थस्' हुआ। अब ङित् लकार होने से 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र द्वारा थस् के स्थान पर 'तम्' आदेश– 'अभू+तम्'। पुनः कर्त्रर्थक सार्वधातुक 'तम्' के परे रहते 'कर्तरि शप्' से प्राप्त शप् का बाध करके 'च्लि लुङि' से 'च्लि' हुआ। च्लि के चकार की इत्संज्ञा और लोप होकर– 'अभू+लि+तम्' बना। 'च्लेः सिच्' से 'च्लि' के स्थान पर सिच् होकर, सिच् के अनुबन्धों का लोप होकर तथा 'गतिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदषु' से सिच् के सकार का लोप होकर– 'अभू+तम्' बना। अन्ततः वर्णसम्मेलन करके 'अभूतम्' यह क्रियापद सिद्ध हुआ।

6) अभूत – पूर्ववत् 'भू सत्तायाम्' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में, भूतसामान्य अर्थ के द्योतित होने पर 'लुङ्' सूत्र द्वारा लुङ् लकार हुआ– 'भू+लुङ्'। लुङ् के अनुबन्धों का पूर्ववत् लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर पूर्व की भाँति आत्मनेपद के निमित्तों से रहित धातु से 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद में, मध्यम पुरुष बहुवचन में 'बहुषु बहुवचनम्' से 'थ' प्रत्यय का विधान किया गया– 'भू+थ'। अब लुङ् विषयक 'भू' से परे 'थ' के होने पर 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र से 'भू' को अट् का आगम हुआ– 'अट् भू+थ'। अट् के टकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा एवं 'तस्य लोपः' से लोप

होकर– 'अभू+थ' हुआ। ङित् लकार सम्बन्धी 'थ' के स्थान पर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से 'त' सर्वादेश हुआ 'अभू+त'। अब सार्वधातुक 'त' के परे रहते 'कर्तरि शप्' से शप् की प्राप्ति हो रही थी जिसका बाध करके 'च्लि लुङि' से 'च्लि' प्रत्यय हुआ– 'अभू+च्लि+त'। च्लि के चकार की 'चुटू' सूत्र से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होकर– 'अभू+लि+त' बना। 'च्लेः सिच्' से च्लि (लि) के स्थान पर सिच् आदेश, इकार एवं चकार अनुबन्धों का लोप– 'अभू+स्+त'। अब 'गतिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदषु' सूत्र द्वारा सिच् के सकार का लोप होकर– 'अभू+त' की दशा में वर्णसम्मेलन करके 'अभूत' क्रियापद की सिद्धि हुई।

7) **अभूवम्** – 'भू सत्तायाम्' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में, भूतसामान्य अर्थ के द्योतित होने पर 'लुङ्' सूत्र द्वारा लुङ् लकार हुआ– 'भू+लुङ्'। लुङ् के अनुबन्धों का पूर्ववत् लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' से परस्मैपद संज्ञक प्रत्ययों में से 'अस्मद्युत्तमः' सूत्र से उत्तम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' से एकवचन की विवक्षा में 'मिप्' प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+मिप्'। अब ङित् लकार सम्बन्धी 'मिप्' को 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' से अम् आदेश हुआ– 'भू+अम्' बना। अब लुङ् सम्बन्धी अम् के परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से 'भू' को अट् का आगम हुआ; और टकार का लोप होकर प्रत्यय के टित्व के कारण 'आद्यन्तौ टकितौ' से 'भू' का आद्यवय हुआ– 'अभू+अम्'। अब लुङ् विषयक अच् परे होने पर 'भुवो वुग् लुङ्लिटोः' से 'भू' को वुक् का आगम हुआ, अनुबन्ध लोप होकर कित्व के कारण वह भू के बाद में आया– 'अभूव्+अम्'। अब 'अम्' कर्त्रर्थक सार्वधातुक के परे रहते 'कर्तरि' सूत्र से प्राप्त शप् का बाध होकर 'च्लि लुङि' से लुङ् परे होने पर 'च्लि' हुआ; अनुबन्ध लोप होकर– 'अभूव्+लि+अम्' बना। 'लि' को 'च्लेः सिच्' से सिच्, सिच् के अनुबन्धों का लोप होकर– 'अभूव्+स्+अम् हुआ।

अब इस दशा में 'गतिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदषु' सूत्र से सिच् के सकार का लोप होकर– 'अभूव्+अम्' बना। अन्ततः वर्णसम्मेलन होकर 'अभूवम्' पद सिद्ध हुआ।

8) **अभूव** – 'भू सत्तायाम्' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में, भूतसामान्य अर्थ के द्योतित होने पर 'लुङ्' सूत्र द्वारा लुङ् लकार हुआ– 'भू+लुङ्'। लुङ् के अनुबन्धों का पूर्ववत् लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर परस्मैपद, उत्तम पुरुष द्विवचन की विवक्षा में 'वस्' प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+वस्'। लुङ् सम्बन्धी वस् के परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से 'भू' को अट् का आगम, टकार अनुबन्ध का लोप, प्रत्यय के टित्व के कारण 'भू' के आदि में आकर – 'अभू+वस्' बना। अब यहाँ पर कर्त्रर्थक सार्वधातुक वस् के परे रहते 'कर्तरि शप्' सूत्र से प्राप्त शप् का बाध होकर 'च्लि लुङि' से 'च्लि' प्रत्यय हुआ– 'अभू+च्लि+वस्'। चकार अनुबन्ध की इत्संज्ञा और लोप, 'च्लेः सिच्' से च्लि के स्थान पर सिच् आदेश, सिच् के अनुबन्धों का लोप होकर–'अभू+स्+वस्' बना। पुनः 'गतिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदषु' सूत्र से सिच् के सकार का लोप होकर– 'अभू+वस्' बना। अब ङित् सम्बन्धी वस् के सकार का लोप होकर– 'अभू व' की दशा में वर्णसम्मेलन होकर 'अभूव' रूप सिद्ध हुआ।

9) **अभूम** – 'भू सत्तायाम्' धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में, भूतसामान्य अर्थ के द्योतित होने पर 'लुङ्' सूत्र द्वारा लुङ् लकार हुआ– 'भू+लुङ्'। लुङ् के अनुबन्धों का पूर्ववत् लोप होकर– 'भू+ल्' बना। पुनः लकार के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद, उत्तम पुरुष बहुवचन में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र से 'मस्' प्रत्यय का विधान किया गया– 'भू+मस्' की स्थिति में लुङ् सम्बन्धी मस् के परे रहने के कारण 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र से 'भू' को अट् का आगम, टकार अनुबन्ध को लोप, टित्व के कारण भू के आदि में स्थित

होकर– 'अभू+मस्' हुआ। अब कर्त्ता अर्थ वाले सावर्वधातुक (मस्) के परे होने के कारण 'कर्तरि शप्' से प्राप्त शप् का बाध होकर 'च्लि लुङ्' से 'च्लि' प्रत्यय हुआ; च्लि के चकार की 'चुटू' सूत्र द्वारा इत्संज्ञा एवं 'तस्य लोपः' से लोप होकर– 'अभू+ति+मस्' बना। पुनः 'च्लेः सिच्' से च्लि (लि) के स्थान पर सिच् एवं अनुबन्धों का लोप होने के कारण– 'अभू+स्+मस्' बना और : 'गतिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदषु' सूत्र से सिच् के सकार का लोप होकर– 'अभू+मस्' बना। अब ङित् लकार सम्बन्धी 'मस्' के सकार का 'नित्यं ङितः' से लोप होकर– 'अभू+म' तथा वर्णसम्मेलन करके 'अभूम' क्रियापद सिद्ध हुआ।

15.4 भू धातु के लृङ् लकार की रूपसिद्धि में प्रयुक्त सूत्र

सूत्र – लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ।।3/3/139।।

वृत्ति – हेतु-हेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तम्, तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात् क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम्।

अभविष्यत्। अभविष्यताम्। अभविष्यन्। अभविष्यः। अभविष्यतम्। अभविष्यत्। अभविष्यम्। अभविष्याव। अभविष्याम।

सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदा सुभिक्षमभविष्यत्, इत्यादि ज्ञेयम्।

अर्थ – हेतु-हेतुमद्भाव आदि जो लिङ् के निमित्त कहे गये हैं, उनमें यदि भविष्यत्कालिक क्रिया कही जाय, तो धातु से परे लृङ् प्रत्यय होता है, क्रिया की अनिष्पत्ति (असिद्धि) गम्यमान हो तो।

व्याख्या – 'लिङ्निमित्ते' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'लृङ्' प्रथमा विभक्ति एकवचन, 'क्रियातिपत्तौ' सप्तमी विभक्ति एकवचन, 'भविष्यति सप्तमी विभक्ति एकवचन', ('भविष्यति मर्यादावचनेऽवरास्मिन्' से)। धातोः, प्रत्ययः, परश्च– ये तीनों अधिकृत हैं।

अष्टाध्यायी के तृतीयाध्याय के तृतीयपाद में अनेक सूत्रों के द्वारा लिङ् का विधान किया गया है। वहाँ जो-जो लिङ् के निमित्त कहे गये हैं, उनमें यदि भविष्यत्काल विवक्षित होगा तो धातु से परे लृङ् लकार हो जायेगा परन्तु शर्त यह है कि वहाँ क्रिया की अनिष्पत्ति (निष्पन्न न होना) पायी जानी चाहिए। उदाहरणार्थ इस प्रकारण में 'हेतु-हेतुमतोर्लिङ्' सूत्र आया है। इसका अर्थ है– 'हेतु-हेतुमद्भाव' अर्थात् कार्यकारणभाव में धातु से परे लिङ् लकार और लृट् लकार का विधान होता है, यथा –'गुरुं चेत् प्रणमेत् शास्त्रान्तं गच्छेत्' (यदि गुरू का सत्कार करे, जो शास्त्र का पारगामी हो जाये)। यहाँ पर 'गुरू का सत्कार करना' हेतु या कारण है तथा 'शास्त्र का पारगामी होना' हेतुमत् या कार्य है। अतः कार्य-कारणभाव में दोनों क्रियाओं के साथ लिङ् लकार का प्रयोग हुआ है। यहाँ पर हेतु-हेतुमद्भाव में लिङ समझना चाहिए परन्तु लिङ् के इसी निमित्त अर्थात् हेतु-हेतुमद्भाव में भविष्यत् काल विवक्षित होने पर प्रकृत सूत्र से लृङ् लकार का विधान किया जाता है। यथा – 'वृष्टिश्चेदभविष्यत् तदा सुभिक्षमभविष्यत्'। अर्थात् यदि वर्षा होगी तो सुभिक्ष (बहुत अन्न) होगा (परन्तु वक्ता को अन्य प्रमाण से निश्चय हो चुका है कि ऐसा नहीं होना है)। यहाँ पर 'वर्षा का होना' कारण तथा 'सुभिक्ष' कार्य है और ये दोनों भविष्यत्कालिक हैं; और वक्ता को पूर्ण विश्वास है कि वर्षा नहीं होनी है। अतः एसे स्थलों पर दोनों ओर की क्रियाओं से लृङ् लकार का प्रयोग हुआ है। ध्यान देने की बात है कि लृङ् के प्रयोग में तीन बातों की आवश्यकता होती है –

(क) लिङ् का निमित्त उपस्थित होना अर्थात् जिस-जिस शर्त के साथ लिङ् का विधान किया गया है उस-उस शर्त का पूरा होना, यथा– हेतु-हेतुमद्भाव में लिङ् का विधान किया गया है; अतः लृङ् में भी उसका होना आवश्यक है।

(ख) भविष्यत् काल का होना। मान लो कि यदि हेतु-हेतुमद्भाव आदि लिङ् के निमित्त वर्तमान काल में हो तो लृङ् का प्रयोग नहीं होगा।

(ग) क्रिया की अतिपत्ति अर्थात् असिद्ध होना। वक्ता कार्यकारणभाव आदि का प्रयोग तो करता है परन्तु उसे किसी अन्य प्रमाण से यह निश्चय हो चुका होता है कि यहाँ क्रिया होनी नहीं है।

इन तीनों मे से यदि कोई एक भी शर्त पूरी नहीं होगी तो, लृङ् नहीं होगा। पुनः जब वक्ता को क्रिया की अनिष्पत्ति कहनी अभीष्ट नहीं होगी, तो 'हेतु–हेतुमतोर्लिङ् से लिङ् का प्रयोग होगा, लृङ् का नहीं।

ध्यान रहे कि जिस प्रकार ऊपर भविष्यत् काल में क्रियातिपत्ति गम्यमान होने पर लिङ् के निमित्तों में लृङ् का विधान हुआ है, वैसे भूतकाल में भी किया जा सकता है। इसके लिए आचार्य पाणिनि ने– 'भूते च' (3.3.140) सूत्र बनाया है। भूतकाल में उदाहरण, यथा – सुवष्टिश्चेदभविष्यत् तदा सुभिक्षमभविष्यत्' यह भूतकाल में ही प्रयुक्त है। इसके अतिरिक्त अन्य सूत्र भी हैं, जिनका पूर्व इकाइयों में पदे-पदे प्रयोग किया गया है। अतः यहाँ उनकी पुनरावृत्ति उचित नहीं है। हाँ, सिद्धि-प्रक्रिया में उन्हें प्रयोग किया जायेगा।

15.5 भू धातु के लृङ् लकार के रूपों की सिद्धि प्रकिया

1) अभविष्यत् – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में भविष्यत्कालिक हेतु-हेतुमद्भाव और क्रिया की अनिष्पत्ति अर्थ गम्यमान होने पर 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' सूत्र से लृङ् लकार का विधान हुआ तो, 'भू+लृङ्' बना। लृङ् के ऋकार और ङकार की क्रमशः 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' एवं 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर आत्मनेपद के निमित्तों से रहति 'भू' धातु से 'शेषात् कर्तरि परस्मैपदम्' सूत्र द्वारा परस्मैपद में, मध्यम एवं उत्तम पुरुष के विषय से रहित होने के कारण 'शेषे प्रथमः' से प्रथम पुरुष में, 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र द्वारा एकवचन की विवक्षा में 'तिप्' प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+तिप्'। तिप् के पकार अनुबन्ध का लोप होकर – 'भू+ति' हुआ। अब लृङ् सम्बन्धी 'ति' के परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से भू को अट् का आगम् टकार अनुबन्ध का लोप, टित्व के कारण 'आद्यन्तौ' से 'भू' का आदि अवयव बना– 'अभू+ति'। अब कर्त्रर्थक सार्वधातुक 'ति' के परे रहते 'कर्तरि शप्' सूत्र से प्राप्त शप् का बाध करके 'स्यतासी लृलुटोः' से 'स्य' प्रत्यय हुआ– 'अभू+स्य+ति'। चूंकि 'स्य' 'आर्धधातुकं शेषः' सूत्र से आर्धधातुक है; अतः उसको वलादि होने के कारण 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से इट् का आगम, टकार अनुबन्ध का लोप, टित्व के कारण 'स्य' का आदि अवयव बना– 'अभू+इ+स्य+ति'। अब 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग 'भू' के ऊकार को गुण, ओकार को 'एचोऽयवायावः' से अवादेश– 'अभव्+इ+स्य+ति'। अब 'अभविस्यति' की दशा में 'आदेश प्रत्यययोः' से सकार को मूर्धन्य होकर 'अभविष्यति' बना। अन्ततः तकारोत्तरवर्ती इकार का 'इतश्च' से लोप होकर 'अभविष्यत्' क्रियापद सिद्ध हुआ।

2) अभविष्यताम् – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में भविष्यत्कालिक हेतु-हेतुमद्भाव और क्रिया की अनिष्पत्ति अर्थ गम्यमान होने पर 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' सूत्र से लृङ् लकार का विधान हुआ तो, 'भू+लृङ्' बना। लृङ् के ऋकार और ङकार की क्रमशः 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' एवं 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर परस्मैपद, प्रथम पुरुष द्विवचन में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र से द्विवचन में 'तस्' के परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से 'भू' को अट् आगम् टकार अनुबन्ध का लोप, टित्व के कारण आदि में स्थित होकर– 'अभू+तस्' बना। अब कर्त्रर्थक सार्वधातुक 'तस्' के परे रहते 'कर्त्तरि' से प्राप्त 'शप्' का बाध होकर 'स्यतासी लृलुटोः' से 'स्य' हुआ– 'अभू+स्य+तस्'। अब वलादि सार्वधातुक 'स्य' को 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' सूत्र से इट् का आगम हुआ– 'अभू+इ+स्य+तस्'। अब आर्धधातुक इट् (इ) के परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग भू को गुण ओकार, 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अवादेश– 'अभव्+इ+स्य+तस्' 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से 'तस्' आदेश– 'अभविस्य+ताम्'। पुनः वर्णसम्मेलन होकर– 'अभविस्यताम्' बना। अब 'आदेश प्रत्यययोः' से सकार को मूर्धन्य आदेश होकर 'अभविष्यताम्' रूप सिद्ध हुआ।

3) अभविष्यन् – अकर्मक 'भू' सत्तायाम् धातु से 'लः कर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः' सूत्र द्वारा कर्तृत्व की विवक्षा में भविष्यत्कालिक हेतु-हेतुमद्भाव और क्रिया की अनिष्पत्ति अर्थ गम्यमान होने पर 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' सूत्र से लृङ् लकार का विधान हुआ तो, 'भू+लृङ्' बना। लृङ् के ऋकार और ङकार की क्रमशः 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' एवं 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा और 'तस्य लोपः' से लोप होकर– 'भू+ल्' बना। अब लकार के स्थान पर परस्मैपद प्रथम पुरुषब हुवचन में 'बहुषु बहुवचनम्' सूत्र से 'झि' प्रत्यय का विधान किया गया– 'भू+झि'।

'झोऽन्तः' सूत्र से झकार को 'अन्त्' आदेश– 'भू+अन्त्+इ' और 'भू+अन्ति'। लुङ् विषयक 'अन्ति' के परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से 'भू' को अट् का आगम हुआ, टकार अनुबन्ध का लोप और टित्व के कारण आदि में स्थित होकर– 'अभू+अन्ति'। अब पुनः 'कर्तरि शप्' से प्राप्त शप् का बाध करके 'स्यतासी लृलुटोः' से 'स्य' प्रत्यय हुआ– अभू+स्य+अन्ति'। अब वलादि आर्धधातुक 'स्य' को 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' सूत्र से इट् का आगम, अनुबन्ध का लोप टित्व के कारण आदि में स्थिति– 'अभू+इ+स्य+अन्ति'। पुनः 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग भू को गुण, ओकार को 'एचोऽयवायावः' से अवादेश– 'अभव्+इ+स्य+अन्ति' 'अतोगुणे' से पररूप, वर्णसम्मेलन करने से 'अभविस्यन्ति' बना। अब 'आदेशप्रत्यययोः' सूत्र से सकार को मूर्धन्य भाव होकर– 'अभविष्यन्ति' बना। अन्ततः 'इतश्च' सूत्र से तकारोत्तरवर्ती इकार का एवं 'संयोगान्तस्य लोपः' से तकार का लोप करके 'अभविष्यन्' रूप सिद्ध हुआ।

4) **अभविष्यः** – पूर्ववत् 'भू सत्तायाम्' धातु से भविष्यत्कालिक हेतु-हेतुमद्भाव में क्रिया की असिद्धि गम्यमान होने पर 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' सूत्र द्वारा लृङ् प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+लृङ्'। लृङ् के अनुबन्धों का लोप– 'भू+ल्'। लकार के स्थान पर परस्मैपद मध्यम पुरुष में 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः' सूत्र से, एकवचन की विवक्षा में 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' सूत्र द्वारा सिप् प्रत्यय हुआ– 'भू+सिप्'। पकार की इत्संज्ञा ओर लोप– 'भू+सि'। चूंकि 'सि' लुङ् सम्बन्धी है, अतः 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से भू को अट् आगम, टकार अनुबन्ध का लोप, प्रत्यय के टित्व के कारण भू के आदि में स्थिति– 'अभू+सि'। पुनः 'स्यतासी लृलुटोः' से शप् का बाध करके 'स्य' विकरण– 'अभू+स्य+सि'। वलादि आर्धधातुक 'स्य' को 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से इट् का आगम, टकार की इत्संज्ञा और लोप, टित्व से 'स्य' के आदि में स्थिति– 'अभू+इ+स्य+सि'। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग 'भू' को

गुण, ओकार को 'एचोऽयवायावः' से अवादेश– 'अभव्+इ+स्य+सि'। अब वर्ण सम्मेलन होकर– 'अभविस्यसि' बना। पुनः 'आदेशप्रत्यययोः' से सकार को मूर्धन्य आदेश होकर – 'अभविष्यसि' बना। अब 'इतश्च' से सकारोत्तरवर्ती इकार का लोप– 'अभविष्यस् हुआ। अन्ततः सकार को रुत्व और विसर्ग होकर 'अभविष्यः' रूप सिद्ध हुआ।

5) **अभविष्यतम्** – पूर्ववत् 'भू सत्तायाम्' धातु से भविष्यत्कालिक हेतु-हेतुमद्भाव में क्रिया की असिद्धि गम्यमान होने पर 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' सूत्र द्वारा लृङ् प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+लृङ्'। लृङ् के अनुबन्धों का लोप– 'भू+ल्'। अब लकार के स्थान पर परस्मैपद मध्यम पुरुष द्विवचन में 'थस्' प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+थस्'। 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से थस् के स्थान पर 'तम्' आदेश हुआ– 'भू+तम्'। अब लृङ् सम्बन्धी 'तम्' के परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र से 'भू' को पूर्ववत् अट् आगम, टकार अनुबन्ध का लोप, टित्व के कारण 'भू' का आदि अवयव– 'अभू+तम्'। सार्वधातुक 'तम्' के परे रहते 'कर्तरि शप्' सूत्र से प्राप्त शप् का 'स्यतासी लृलुटोः' से, बाध होकर 'स्य' प्रत्यय हुआ– 'अभू+स्य+तम्। अब वलादि आर्धधातुक 'स्य' को पूर्ववत् इट् आगम– 'अभू+इ+स्य+तम्'। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग भू के ऊकार को गुण ओकार 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अवादेश– 'अभव्+इ+स्य+तम्' और वर्णसम्मेलन होकर– 'अभविस्यतम्' बना। अब 'आदेश प्रत्यययोः' से सकार को मूर्धन्य आदेश होकर– 'अभविष्यतम्' रूप सिद्ध हो गया।

6) **अभविष्यत** – पूर्ववत् 'भू सत्तायाम्' धातु से भविष्यत्कालिक हेतु-हेतुमद्भाव में क्रिया की असिद्धि गम्यमान होने पर 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' सूत्र द्वारा लृङ् प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+लृङ्'। लृङ् के अनुबन्धों का लोप– 'भू+ल्'। 'भू+ल्' की दशा में परस्मैपद मध्यम पुरुष बहुवचन की विवक्षा में 'थ' प्रत्यय हुआ– 'भू+थ'। ङित् सम्बन्धी 'थ' के परे रहते

'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' सूत्र से 'थ' के स्थान पर 'त' सर्वादेश हुआ– 'भू+त'। अब लुङ् सम्बन्धी 'त' के परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से 'भू' को अट् का आगम, अनुबन्ध लोप, आदि में स्थिति होकर– 'अभू+त' बना। पुनः 'स्यतासी लृलुटोः' से शप् का बाध कर 'स्य' आदेश– 'अभू+स्य+त'। 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से स्य को इट् का आगम, टकार अनुबन्ध का लोप– 'अभू+इ+स्य+त' 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग 'भू' के अकार को गुण– 'अभो+इ+स्य+त'। 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अवादेश– 'अभविस्यत'। अन्ततः 'आदेशप्रत्यययोः' सूत्र से सकार को मूर्धन्य आदेश होकर 'अभविष्यत' रूप सिद्ध हुआ।

7) **अभविष्यम्** – पूर्ववत् 'भू सत्तायाम्' धातु से भविष्यत्कालिक हेतु-हेतुमद्भाव में क्रिया की असिद्धि गम्यमान होने पर 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' सूत्र द्वारा लृङ् प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+लृङ्'। लृङ् के अनुबन्धों का लोप– 'भू+ल्'। अब लकार के स्थान पर परस्मैपद उत्तम पुरुष में अष्मद्युत्तमः' से, एवं 'द्वयेकयोर्द्विवचनैकवचने' से एकवचन की विवक्षा में मिप् प्रत्यय हुआ– 'भू+मिप्'। मिप् के स्थान पर 'तस्थस्थमिपां तान्तन्तामः' से अम् आदेश हुआ– 'भू+अम्'। पुनः लृङ् विषयक अम् के परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से भू को अट् का आगम, टकार अनुबन्ध का लोप, टित्व के कारण भू के आदि में स्थिति– 'अभू+अम्'। अब 'स्यतासी लृलुटोः' से शप् के स्थान पर 'स्य' आदेश– 'अभू+स्य+अम्'। वलादि आर्धधातुक 'स्य' को 'आर्धधातु' से इट् आगम, टकार अनुबन्ध लोप, टित्व के कारण आदि में स्थिति– 'अभू+इ+स्य+अम्'। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग 'भू' को गुण, ओकार को 'एचोऽयवायावः' से अवादेश होकर– 'अभव्+इ+स्य+अम्' **>** अभविस्य+अम्' बना। 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप होकर– 'अभविस्यम्' बना। अन्ततः 'आदेशप्रत्यययोः' से मूर्धन्य भाव होकर– 'अभविष्यम्' रूप की सिद्धि हुई।

8) अभविष्याव – पूर्ववत् 'भू सत्तायाम्' धातु से भविष्यत्कालिक हेतु-हेतुमद्भाव में क्रिया की असिद्धि गम्यमान होने पर 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' सूत्र द्वारा लृङ् प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+लृङ्'। लृङ् के अनुबन्धों का लोप– 'भू+ल्'। अब लकार के स्थान पर पूर्ववत् परस्मैपद उत्तम पुरुष द्विवचन में वस् प्रत्यय हुआ– 'भू+वस्'। अब लृङ् सम्बन्धी वस् परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से भू को अट् का आगम, टकार अनुबन्ध का लोप, टित्व के कारण भू के आदि में आकर– 'अभू+वस्' बना। 'स्यतासी लृलुटोः' से शप् का बाध करके स्य आदेश हुआ– 'अभू+स्य+वस्'। पुनः वलादि आर्धधातुक स्य को 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से इट् का आगम, टकार अनुबन्ध का लोप– 'अभू+इ+स्य+वस्'। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग भू के अकार को गुण, 'एचोऽयवायावः' से ओकार को अवादेश– 'अभव्+इ+स्य+ स्'। अब 'अभविस्य+वस्' की दशा में 'अतो दीर्घो यञि' से 'अभविस्य' के यकारोतरवर्ती अकार को दीर्घ– 'अभविस्यावस्'। 'आदेशप्रत्यययोः' से मूर्धन्य आदेश एवं सकार का 'नित्यं ङित' से लोप होकर– 'अभविष्याव' रूप बना।

9) अभविष्याम – पूर्ववत् 'भू सत्तायाम्' धातु से भविष्यत्कालिक हेतु-हेतुमद्भाव में क्रिया की असिद्धि गम्यमान होने पर 'लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ' सूत्र द्वारा लृङ् प्रत्यय का विधान हुआ– 'भू+लृङ्'। लृङ् के अनुबन्धों का लोप– 'भू+ल्'। अब लकार के स्थान पर पूर्व की भाँति परस्मैपद, उत्तम पुरुष बहुवचन में मस् प्रत्यय हुआ– 'भू+मस्'। अब लृङ् सम्बन्धी मस् के परे रहते 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से 'भू को अट् का आगम, टकार लोप, टित्व के कारण भू का आदि अवयव होकर– 'अभू+मस्'। 'स्यतासी लृलुटोः' से शप् का बाध करके 'स्य' आदेश 'अभू+स्य+मस्'। वलादि आर्धधातुक 'स्य' को 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से इट् का आगम, अनुबन्ध लोप, टित्व के कारण आदि स्थिति होकर– 'अभू+इ+स्य+मस्'। अब

‘सार्वधातुकार्धधातुकयोः’ सूत्र से इगन्त अंग भू को गुण ओकार, ‘एचोऽयवायावः’ से ओकार को अवादेश– ‘अभव्+इ+स्य+मस्’ बना। वर्णसम्मेलन होकर– ‘अभविस्य’ के यकारोत्तरवर्ती अकार को दीर्घ होकर– ‘अभविष्यामस्’ बना। ‘आदेशप्रत्यययोः’ से सकार को मूर्धन्य होकर– ‘अभविष्यामस्’ एवं अन्त्य सकार का ‘नित्यं ङितः’ से लोप होकर ‘अभविष्याम्’ रूप सिद्ध हुआ।

15.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप भू धातु के ‘लुङ् एवं लृङ् लकार’ की रूपसिद्धि समझ चुके हैं। आप इसी आधार पर अन्य धातुओं की भी सिद्धि सहजता से कर पायेंगे। कुछ नियमों को छोड़कर शेष प्रक्रिया सभी लकारों की एक जैसी ही होती है। हम लुङ् लकार के ‘अभूत्’ से लेकर ‘अभूम’ तक एवं लृङ् लकार के– ‘अभविष्यत्’ से लेकर ‘अभविष्याम्’ तक की सम्पूर्ण सिद्धि-प्रक्रिया का ज्ञान कर चुके हैं। यहाँ पर हमने शप् के स्थान पर ‘स्य’ आदेश एवं इट् आगम को अलग से पढ़ा और लुङ् में शप् के स्थान पर ‘च्लि’ आदेश भी पढ़ा। इसी क्रम में सिच् आदेश एवं उसकी लोप-प्रक्रिया का भी आपने अध्ययन किया। इसी इकाई में हेतु-हेतुमद्भाव एवं क्रियातिपत्ति के विषय में भी आपने अध्ययन किया।

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

27. वरदराजाचार्य, मूल लघुसिद्धान्तकौमुदी, गोरखपुर, गीताप्रेस।
28. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या गोविन्दाचार्य, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, चौखम्भा सुरभारती।
29. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, धरानन्द, लघुसिद्धान्तकौमुदी, दिल्ली, मोतीलाल बनारसी दास।
30. वरदराजाचार्य, हिन्दी व्याख्या शास्त्री, भीमसेन, लघुसिद्धान्तकौमुदी, (भाग–1–6), दिल्ली, भैमी प्रकाशन।
31. शास्त्री, चारुदेव. व्याकरण चन्द्रोदय, (भाग–1–3), दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

15.8 अभ्यास प्रश्न

(1) 'लुङ् सूत्र की व्याख्या कीजिए।

(2) 'अभूत्' पद की सिद्धि-प्रक्रिया समझाइए।

(3) 'च्लि लुङि' सूत्र की व्याख्या कीजिए।

(4) 'अभूवन्' की सिद्धि कीजिए।

(5) 'अभविष्यन्' एवं 'अभविष्यताम्' की सिद्धि-प्रक्रिया बताइए।